जनसेवा और इस्लाम

लेखक
मौलाना सय्यद जलालुद्दीन उमरी

अनुवादक
मुहम्मद सलीम सिद्दीकी

विषय-सूची

दो शब्द

'बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम'

(अल्लाह के नाम से जो बड़ा कृपाशील, अत्यन्त दयावान है।)

मानव-समाज में वास्तविक सुख-शान्ति व समृद्धि जिन बातों पर निर्भर होती है उनमें इनसान के, एक दूसरे के प्रति 'कर्तव्य व अधिकार' का महत्त्व सबसे ज़्यादा है। इतना ही महत्त्व इन दोनों में एक सुसंतुलित सम्मिश्रण का भी है। प्रायः होता यह है कि 'अधिकारों' की ही बात और अपेक्षा व माँग की जाती है, कर्तव्यों की बात सर्वथा दबी-दबाई रह जाती, या रखी जाती है। 'कर्तव्य' और 'अधिकार' में दो पहलुओं से एक गहरा नाता है। एक : किसी व्यक्ति, या व्यक्तियों के समूह व वर्ग को, उसके अपेक्षित व यथार्थ अधिकार मिलने का तक़ाज़ा यह भी है कि इनसे सम्बन्धित कोई व्यक्ति या समूह अपने कर्तव्य भी अवश्यतः पूरे करे। दूसरे : अधिकार-प्राप्ति, अनिवार्यतः कर्तव्य परायणता की शर्त से बँधी हुई है।

विश्व भर में मानव-अधिकारों का हनन हो रहा है। इसकी प्रतिक्रिया में अनेकानेक मानव-अधिकार आन्दोलन चल रहे हैं। असंख्य संगठन इस क्षेत्र में कार्यरत हैं। साथ ही साथ, यह भी एक कटु सत्य है कि इन विश्व व्यापक प्रयत्नों और आन्दोलनों के ही अनुपात में मानव-अधिकारों का हनन भी बढ़ता, फैलता, जटिल होता और क़ाबू से बाहर होता जा रहा है। इस त्रासदी का मूल कारण जानने की यदि गंभीर कोशिश की गई होती तो ज्ञात होता कि अधिकारों के साथ कर्तव्यों की चर्चा और इस दिशा में यथार्थ प्रयत्न न होना ही इस त्रासदी की असल वजह है।

इस्लाम का दावा है कि वह सम्पूर्ण मानव जाति और समस्त समाज के सारे मामलों में भरपूर रहनुमाई करता है, सिद्धान्त देता है, सुनिश्चित नियम भी रखता है और नैतिक व भौतिक, हर स्तर पर समस्याओं का निवारण करता और जटिलताओं को सुलझाता है। उसका यह दावा, अपने पास निरी दार्शनिकता (Indialism) ही नहीं रखता, बल्कि व्यावहारिक स्थलों में अपने साथ मज़बूत दलील व सबूत की शक्ति भी रखता है। मानव-अधिकार व कर्तव्य का एक सन्तुलित प्रावधान इस्लाम की बेमिसाल विशेषता है। मुसलिम समाज की बहुत-सी त्रुटियों, कमज़ोरियों और कोताहियों के बावजूद, उसपर इस्लाम की इस विशेषता का रंग सदा ही छाया रहा है। इतिहास भी इसका साक्षी रहा है और वर्तमान युग में समाजों का तुलनात्मक व निष्पक्ष अवलोकन भी इस बात की गवाही देता है।

मानव-अधिकार के परिप्रेक्ष्य में, मानव-कर्तव्य की जो महत्त्वपूर्ण भूमिका है, उसके एक क्षेत्र—जनसेवा—के सम्बन्ध में इस्लाम ने विस्तारपूर्वक नीति बनाई है, और इसके व्यवहाररत होने के लिए एक मज़बूत आध्यात्मिक व नैतिक बुनियाद पर एक मज़बूत क़ानूनी ढाँचा भी बनाया है। इस बुनियाद और ढाँचे की विशेषता यह है कि एक ओर तो यह अद्वितीय व असमकक्ष है, दूसरी ओर, यह एक ईश्वरीय कृति है। अतः अनन्त काल तक न इस बुनियाद को कोई उखाड़ सकता है, न इस ढाँचे को कोई बदल सकता, कमज़ोर कर सकता, तोड़ सकता या ढा सकता है, क्योंकि इसे क़ुरआन, हदीस व हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) के जीवन के सुपरिचित तथा सर्वज्ञात नमूने में सदा के लिए सुरक्षित कर दिया गया है। यह बात कही जाए तो अतिशयोक्ति न होगी कि यह विशेषता इस्लाम और सिर्फ़ इस्लाम को प्राप्त है।

इस विषय पर, प्रस्तुत पुस्तक, इस्लमी दृष्टिकोण का एक संक्षिप्त ब्यौरा देती है। यह प्रस्तुति, माननीय सैयद जलालुद्दीन उमरी की उर्दू पुस्तक 'इस्लाम में ख़िदमते ख़ल्क़ का तसव्वुर' का हिन्दी रूपान्तर है। हम इस आशा के साथ इसे प्रकाशित कर रहे हैं कि एक तरफ़ हमारे हिन्दी-भाषी मुसलिम-जन, जन-सेवा के प्रति अपने कर्तव्यों से कुछ और अवगत होकर समाज व देश के सामने अपने रवैये, बरताव, आचरण और चरित्र से इस्लाम की गवाही पेश करेंगे और दूसरी तरफ़, यह पुस्तक हमारे ग़ैरमुसलिम भाइयों को इस्लाम से परिचित होने तथा उसके प्रति गंभीर सोच-विचार करने की सामग्री व साधन सिद्ध होगी।

इस विषय पर लेखक की एक पुस्तिका उर्दू में 'इनसानों की ख़िदमत' के शीर्षक से सन् 1978 ई० में प्रकाशित हुई थी। इतने महत्त्वपूर्ण विषय पर हमारी भाषा में कोई आधारभूत पुस्तक नहीं थी। आशा है कि यह कमी इस पुस्तक से किसी सीमा तक पूरी हो सकेगी। इस पुस्त्क का अंग्रेज़ी अनुवाद Social Service in Islam के नाम से प्रकाशित हो चुका है तथा तमिल भाषा में भी इस पुस्तक का अनुवाद हो चुका है।

इस पुस्तक में कछ पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग हुआ है उनका अर्थ पुस्तक के अन्त में दे दिया गया है।

—प्रकाशक

भूमिका

इस्लाम ने जिन विषयों को विशेष महत्त्व दिया है और जिनका विस्तारपूर्वक विवेचन किया है, उनमें 'जनसेवा' का एक विषय भी है। उसने जनसेवा का महत्त्व स्पष्ट किया, उसकी प्रेरणा दी, सेवा की साधारण कल्पना से ही परिचित नहीं कराया बल्कि यह भी बताया कि वे कौन लोग हैं जिनकी सेवा की जानी चाहिए और जो हमारे सद्व्यवहार के हक़दार हैं। उसने बताया कि सभी मुसलमान एक समुदाय हैं। उन्हें एक-दूसरे के दुख-सुख में सम्मिलित होना चाहिए, किन्तु उन्हें इस वास्तविकता को भी नहीं भूलना चाहिए कि वे समस्त मानवजाति की भलाई और कल्याण के लिए उत्तरदायी हैं। इस उत्तरदायित्व का तक़ाज़ा है कि किसी भी व्यक्ति से भेदभाव न किया जाए तथा समय पड़ने पर उसकी हर संभव सेवा की जाए। उसने छोटी-बड़ी हर प्रकार की सेवाओं की प्रेरणा दी, ताकि हर व्यक्ति सरलतापूर्वक उनमें अपनी भूमिका निभा सके। इसके साथ कल्याणकारी सेवाओं का महत्त्व उद्‌घाटित किया और उसमें व्यक्ति एवं राज्य दोनों को सम्मिलित किया। सेवा की भावना जब ग़लत दिशा अपना लेती है तो बड़ा असन्तुलन एवं ख़राबियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। इस्लाम ने उनका निवारण किया। सेवा के बारे में जो ग़लतफ़हमियाँ पाई जाती हैं, उन्हें दूर किया और धर्म की चिन्तन-पद्धति एवं कर्म-पद्धति में इसका उचित स्थान निर्धारित किया। निस्स्वार्थ सेवा की भावना जगाई और सत्यनिष्ठा से अनुप्राणित किया।

पुस्तक में इन सभी पक्षों पर क़ुरआन और हदीस की रौशनी में बहस की गई है। कोशिश इस बात की की गई है कि विषय से सम्बन्धित क़ुरआन की आयतों और हदीसों को अधिक से अधिक जमा किया जाए तथा प्रसंग एवं संदर्भ के अनुकूल उनका उचित अर्थ स्पष्ट किया जा सके और इसके अन्तर्गत 'जनसेवा' के वे पहलू भी सामने आ जाएँ जिनकी आवश्यकता वर्तमान युग को है। इस पूरी बात में जहाँ ज़रूरत महसूस हुई इस्लामी धर्मशास्त्र (फ़िक़्ह), नबी की जीवनी (सीरत) तथा शब्दकोश से भी सहायता ली गई है।

दुआ है कि अल्लाह तआला इस तुच्छ प्रयास को क़बूल करे और उसके बन्दों को अधिक से अधिक लाभ पहुँचे।

—जलालुद्दीन उमरी

मई, 1999 ई०

विषय का परिचय

सेवा एक नैसर्गिक भावना है

अल्लाह की असंख्य सृष्टियों में मानव उसकी सर्वोत्कृष्ट और श्रेष्ठ सृष्टि है। यहाँ उसी की सेवा का विवरण प्रस्तुत है। जब किसी के घर बच्चे का जन्म होता है तो पूरे घर में प्रसन्नता की लहर दौड़ जाती है, ख़ुशी मनाई जाने लगती हैं, दूर एवं पास के मित्रों की ओर से बधाई सन्देश आने लगते हैं, माँ-बाप तथा निकट सम्बन्धी लोग अपनी-अपनी हैसियत के अनुसार उसकी सेवा में लग जाते हैं। बेज़बान, विवश एवं लाचार बच्चे की भूख-प्यास का ध्यान रखा जाता है, उसके दुख-दर्द को समझने तथा उसको दूर करने का उपाय किया जाता है, दवा-इलाज की ज़रूरत पड़ने पर अपनी पहुँच-भर दवा-इलाज तुरन्त किया जाता है। उसे साफ़-सुथरा रखने तथा उसकी गन्दगी को दूर करने में कुछ भी अप्रसन्नता एवं घृणा का आभास नहीं होता। थोड़ा बड़ा होने पर उसकी चंचलता, शरारत, शोर और कोलाहल को सहर्ष सहन किया जाता है। कुछ और बड़ा होने पर उसकी शिक्षा-दीक्षा और उन्नति की चिन्ता होती है। प्रयत्न किया जाता है कि उम्र के साथ-साथ उसकी आवश्यकताएँ भी पूरी होती रहें, उसका उचित विकास हो, ख़ूब फले-फूले और भविष्य में सफल जीवन व्यतीत करने के योग्य हो जाए। इन बातों में यदि कोई कमी हो जाए तो उसके चाहनेवालों को खेद और दुख होता है।

यही बच्चा यदि किसी धनवान, शासक, पूँजीपति अथवा ज़मींदार का हो तो उसकी सेवा भी उसी स्तर की होती है। उसकी आवश्यकताएँ तथा माँगें बड़ी सतर्कता के साथ पूरी की जाती हैं। उसकी साधारण-सी तकलीफ़ पर भी माँ-बाप, स्वजन तथा निकटतम सम्बन्धियों के अतिरिक्त सेवकों तथा दाइयों की टीम की टीम गतिशील हो जाती है तथा उसे चैन एवं आराम पहुँचाने का हर संभव प्रयत्न होने लगता है।

इस सेवा, त्याग और क़ुरबानी के पीछे यह भावना काम कर रही होती है कि बच्चा हमारा है, हमारा सम्बन्धी और हमारे परिवार का व्यक्ति है। उसके पालन-पोषण, शिक्षा-दीक्षा तथा विकास में सहायता करना हमारा कर्त्तव्य है। यह एक निरी नैसर्गिक मनोवृत्ति है जो इनसान के अन्तःकरण से उभरती है। प्रकृति इसके द्वारा मानव-जाति की वंश-परम्परा को चालू रखने की व्यवस्था करती है। इसी कारण दुनिया ने इनसान की इस पवित्र भावना की सदैव प्रशंसा की है। इस भावना का कमज़ोर होना इनसानी नस्ल के लिए बड़ा हानिकारक है। ख़ुदा न करे यदि यह भावना लुप्त या विनष्ट हो जाए तो संसार की बहार लुट जाएगी और हर ओर पतझड़ की उदासी छा जाएगी।

बच्चे की सहज प्रकृति

बच्चे के साथ इस भावुक सम्बन्ध का मुख्य कारण यह है कि वह निर्दोष और सहज स्वभाव का होता है। उसका हृदय उन समस्त दूषित भावनाओं से पवित्र होता है जो मानव के बीच दूरी पैदा करती हैं और द्वेष, शत्रुता तथा बिगाड़ का कारण बनती हैं। उसका किसी वस्तु पर दावा नहीं होता, उसे किसी से शिकायत या दुश्मनी नहीं होती, वह छल-कपट नहीं रखता, वह किसी चीज़ का स्वामी नहीं होता कि किसी को कुछ दे सके, परन्तु वह प्यार और मुहब्बत दे सकता है, देता है; मुस्कान बिखेर सकता है, बिखेरता है। फिर उससे कोई क्यों न मुहब्बत करे और उससे बैर क्यों रखे?

प्रकृति से विचलन आरंभ होता है

समय अपनी गति से आगे बढ़ता रहता है। बच्चा भी दिन और रात, महीने और वर्ष तय करता हुआ, बड़ा होता, पलता-बढ़ता विवेकावस्था को पा लेता है। उसके विवेक एवं बुद्धि में दृढ़ता आती है तथा उसके अन्दर अपने व्यक्तित्व का एहसास उभरता है। स्वतंत्र चिन्तन और स्वतंत्रता का दौर शुरू होता है। वह किसी के विचारों का पाबन्द नहीं होता। इस विषय में उसके अपने निकटतम सम्बन्धियों तक से मतभेद शुरू हो जाते हैं। उसकी अपनी भावनाएँ होती हैं जिनमें वह किसी भी प्रकार की रुकावट एवं हस्तक्षेप को सहन नहीं करता। वह दूसरों की इच्छाओं का पाबन्द नहीं होता। उसकी अपनी व्यक्तिगत इच्छाएँ होती हैं जो उसे अपने साथ लेकर चलती हैं। उसके अन्दर अपने अधिकारों का एहसास बड़ी तीव्रता से जाग उठता है जिन्हें वह छोड़ने को तैयार नहीं होता। वह अपने हितों की रक्षा हर मूल्य पर करना चाहता है। वह कुछ आगे बढ़ता है तथा धीरे-धीरे स्वार्थ एवं लोभ का शिकार हो जाता है। इस आग को बुझाने के लिए उसे ग़लत तरीक़े और अवैध उपाय भी अपनाने पड़ते हैं। सत्यनिष्ठा की सम्पत्ति उससे छिन जाती है, उसके कार्य-कलाप निस्स्वार्थ नहीं होते। वह अपने हितों को सामने रखकर अन्य लोगों से सम्पर्क साधता और व्यवहार करता है। उसकी दोस्ती तथा दुश्मनी उसके अधीन होकर रह जाती है। अन्य लोग भी उसे हितों के ग़ुलाम ही की हैसियत से देखते हैं और अपना विरोधी एवं प्रतिद्वंद्वी समझने लगते हैं।

इस प्रकार प्रेम, सहानुभूति, सेवा, त्याग और कुरबानी का वातावरण धीरे-धीरे बदलता चला जाता है। कभी-कभी तो भावनाओं का पूरा संसार अस्त-व्यस्त होकर रह जाता है। निकटतम सम्बन्धियों, सगे भाइयों, यहाँ तक कि माँ-बाप और संतान के बीच झगड़े एवं शत्रुता उत्पन्न हो जाती है। मित्रता का स्थान शत्रुता, त्याग का स्थान प्रतिशोध तथा सेवा का स्थान पीड़ा ले लेती है। जो बच्चा प्रेम के फूल बिखेर रहा था

वही, बड़ा होकर घृणा की आग बरसाने लगता है तथा जो लोग उसे सीने से लगाए रहते थे, अब उन्हें उसका साथ भी अप्रिय लगने लगता है।

इस्लाम की सुधारवादी भूमिका

संसार के विभिन्न धर्मों ने प्रयत्न किया है कि मानव को जीवनभर वही प्रेम मिले जो उसे इस संसार में आते समय मिलता है और हितों का संघर्ष इस प्रेम को नष्ट न कर दे। वह निर्बल एवं निस्सहाय हो तो उसकी सेवा की जाए और जब वह शक्तिशाली हो तो दूसरों की सेवा करे। वह लाचार एवं अधिकारहीन हो तो उसे सहारा दिया जाए और जब उसके हाथ में अधिकार एवं सत्ता आए तो वह दूसरों का सहारा बन जाए। इस सम्बन्ध में इस्लाम ने बेमिसाल भूमिका निभाई है। इसी का कुछ स्पष्टीकरण यहाँ दिया जा रहा है।

अल्लाह से सम्बन्ध सेवा की भावना को सुदृढ़ करता है

बेशक इनसान के अन्दर सेवा की भावना मौजूद है परन्तु अपना स्वार्थ, वैयक्तिक एवं सामुदायिक हित और वासनात्मक इच्छाएँ इस भावना पर प्रभावी हो जाती हैं और इनसान को अपने ही जैसे इनसानों के साथ अत्याचार एवं अन्याय का व्यवहार करने में कुछ भी संकोच नहीं होता। कभी-कभी तो वह हिंसक आचार एवं पशुता के स्तर पर उतर आता है। इस्लाम के निकट शुद्ध और सच्चे मन से अल्लाह की इबादत और उससे सम्बन्ध स्थापित करके इनसान इन कमज़ोरियों पर क़ाबू पा सकता है। इसलिए कि मानव-सेवा का सम्बन्ध अल्लाह की इबादत से जुड़ा हुआ है। जिस दिल में अल्लाह का प्रेम प्रवाहित होगा वह उसके बन्दों के प्रेम से ख़ाली न होगा। अल्लाह से इनसान का सम्बन्ध जितना मज़बूत होगा, बन्दों से भी उसका सम्बन्ध उतना ही मज़बूत होगा। अतः क़ुरआन मजीद जब इनसानों के अधिकार, उनकी सेवा और उनके साथ सद्व्यवहार का वर्णन करता है तो उसके आगे-पीछे अल्लाह की इबादत, उसकी पकड़ का भय या नमाज़ का वर्णन अवश्य करता है।[1] यह इस वास्तविकता का स्पष्टीकरण है कि अल्लाह तआला की इबादत और उससे सम्बन्ध इनसान के अन्दर अन्य इनसानों के अधिकार पहचानने और उनकी सेवा करने की भावना पैदा करता है। इस सम्बन्ध के कमज़ोर और शिथिल होने के बाद इन अधिकारों के पूरा करने में कोताही और लापरवाही अवश्य ही उत्पन्न होगी। जो व्यक्ति अल्लाह तआला को और उसके रात-दिन के उपकारों को भूल बैठे, वह बड़ी सरलता से बन्दों के उपकारों को भुला सकता है। उसके द्वारा उनके अधिकारों का हनन कुछ भी आश्चर्य की बात न होगी।

---

1. इसके अनेक उदाहरण इसी पुस्तक में आगे आ रहे हैं।

अल्लाह के नेक बन्दे निस्स्वार्थ सेवा करते हैं

कुरआन मजीद ने पूरे मानव इतिहास का अनुभव हमारे सामने प्रस्तुत किया है कि जो लोग अल्लाह का डर रखते हैं, जो वास्तव में उसकी इबादत करनेवाले (उपासक) होते हैं, इनसानों के साथ उनका व्यवहार भी सहानुभूतिपूर्ण एवं हित-चिन्तन का होता है। वे किसी के अधिकार का हनन नहीं करते, किसी पर अत्याचार नहीं करते तथा अन्याय एवं ज़ुल्म से उनका दामन पाक होता है। वे किसी व्यक्तिगत स्वार्थ अथवा बाहरी दबाव के बिना ही मानव-सेवा करते हैं। उनके सामने कोई सांसारिक हित नहीं होता, वे उसे ख्याति अर्जित करने एवं नाम कमाने का साधन नहीं बनाते और इस बहाने से लोगों को अपने से निकट करना और उनपर अपना शासन एवं अपनी श्रेष्ठता स्थापित करना नहीं चाहते, बल्कि उसे एक कर्त्तव्य समझकर ही उसका पालन करते हैं। वे केवल अल्लाह की प्रसन्नता के इच्छुक होते हैं और उसी से बदले की आकांक्षा करते हैं। उनके शत्रु भी उनकी शिष्टता, संस्कार, नैतिकता, सहानुभूति तथा शुभचिन्तक होने की गवाही देने पर विवश होते हैं। इसके विपरीत जब भी इनसान अल्लाह के भय से लापरवाह हुआ तो इनसान के साथ उसका व्यवहार ग़लत हो गया, वह न्याय एवं संतुलन से हट गया, उसने अत्याचार एवं ज़ुल्म की राह अपनाई और दूसरों के अधिकारों का हनन किया। तात्पर्य यह कि हर वह अत्याचार किया जिसकी कल्पना की जा सकती है।[1]

सेवा के लिए भावनाओं की पवित्रता आवश्यक है

सेवा के लिए इनसान के हृदय को पवित्र भावनाओं का केन्द्र होना चाहिए। वह सही अर्थ में उसी समय सेवा कर सकता है जबकि उसके अन्दर सहानुभूति, दया,

---

1. कभी-कभी कहा जाता है कि जनसेवा के लिए अल्लाह और धर्म में विश्वास करना आवश्यक नहीं है। इसके बिना भी सेवा हो सकती है। इसके प्रमाण में पाश्चात्य राष्ट्रों का उल्लेख किया जाता है कि उन्होंने पूरी दुनिया में जनहित के बड़े-बड़े कार्य किए हैं। इसका उत्तर हमारे उस स्पष्टीकरण में मौजूद है कि मानव के स्वभाव में मानवजाति की सेवा की भावना पाई जाती है। यह इसी का प्रदर्शन है, परन्तु जब इस भावना से निजी और सामुदायिक हित टकराते हैं तो वह शिथिल होकर रह जाती है और इनसान उसके ठीक विरुद्ध व्यवहार को अपना लेता है। चुनांचे यही पाश्चात्य राष्ट्र जिनकी जनहित सम्बन्धी सेवाओं की चारों ओर बड़ी धूम है, अपने स्वार्थों के लिए विरोधी राष्ट्रों की आर्थिक नाकाबन्दी करते हैं, उनपर राजनीतिक दबाव बनाए रखते हैं तथा विवशता एवं शोषण के तमाम हथकंडे प्रयोग करते हैं। इस प्रकार उन्हें तबाह और बरबाद करने में कोई कमी नहीं छोड़ते। ख़ुदापरस्ती इसी से व्यक्तियों और राष्ट्रों को सुरक्षित रखती है और सेवा की स्वाभाविक भावना पर हितों को प्रभावी नहीं होने देती।

त्याग, क़ुरबानी, क्षमा, संयम व सहनशीलता तथा शुद्धहृदयता और निस्स्वार्थता जैसी नैतिक विशेषताएँ पाई जाएँ और वह स्वार्थ, लोभ, द्वेष, ईर्ष्या, अत्याचार, धोखा तथा छल जैसी बुराइयों पर नियंत्रण प्राप्त कर ले, अन्यथा सेवा का हक़ अदा न होगा और यदि कभी कोई सेवा होगी भी तो त्रुटियों और गन्दगियों से पाक न होगी। इस्लाम इनसान को उच्चकोटि के शिष्टाचार से सुसज्जित करता और अधम दुर्गुणों से बचाता है। इस नैतिक प्रशिक्षण के लिए उसके पास प्रचार-प्रसार, प्रेरित व उत्साहित करने तथा बुरे परिणामों से डराने की एक पूरी नैतिक व्यवस्था मौजूद है। उसके पास क़ानून भी है, जिनकी वह समय पड़ने पर सहायता लेता है।

सत्ता सेवा के लिए है

इस संसार में इनसान को शक्ति, संपत्ति, समृद्धि, शासन व सत्ता इसलिए नहीं मिलती कि वह दूसरों को गुलाम बनाए और अपने शासन का डंका पीटे, बल्कि उसे ये साधन परीक्षा के रूप में अल्लाह देता है। जीवन के जिस क्षेत्र में भी साधन उपलब्ध हों उसमें उसकी परीक्षा यह है कि ये साधन अल्लाह के बन्दों के काम आते हैं या नहीं? वह उनके अधिकारों का ध्यान रखता है या नहीं? ये साधन-सामग्रियाँ जितनी अधिक होंगी परीक्षा भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण व कठिन होती है। क़ुरआन की निम्नलिखित आयत इसी वास्तविकता की ओर संकेत करती है :

- "वही (अल्लाह ही) है जिसने धरती में तुम्हें 'ख़लीफ़ा' (नायब) बनाया और तुममें से कुछ के दर्जे कुछ पर बढ़ाए, ताकि जो कुछ उसने तुम्हें दिया है उसमें तुम्हारी परीक्षा ले। निस्संदेह तुम्हारा 'रब' बहुत जल्द सज़ा देनेवाला है और निश्चय ही बड़ा क्षमाशील और दयावान है।" —क़ुरआन, 6 : 165

सेवा में ज़ोर-ज़बरदस्ती न हो

इस संसार में दूसरों से सेवा ली भी जाती है और दूसरों की सेवा की भी जाती है। जहाँ सेवा ली जाती हैं, वहाँ प्रायः ज़ोर-ज़बरदस्ती का पहलू सम्मिलित हो जाता है, अत्याचार और अन्याय होता है, शोषण होता है, अधिकार छीने जाते हैं, भावनाओं को आघात पहुँचाया जाता है और मानव की प्रतिष्ठा मिट्टी में मिल जाती है। यह क्रम जब लम्बा होता है तो गुलामी की सीमाओं को छूने लगता है। इस्लाम हर प्रकार के अत्याचार और ज़ोर-ज़बरदस्ती के विरुद्ध है और उसे मिटा देना चाहता है। उसके नज़दीक, इनसान को इनसान का ग़ुलाम बना देना मानव-अधिकार का घोर हनन है।

सेवा सम्मान दिलाती है

यही सेवा यदि सत्यनिष्ठा और प्रेमभाव के साथ हो और उससे घटिया स्वार्थ जुड़े

हुए न हों तो सेवा करनेवाले को बड़ा सम्मान मिलता है। उसके प्रति प्रेम और आदर की भावना उत्पन्न होती है, उसकी श्रेष्ठता को महसूस किया जाता है और वह लोगों के दिलों पर शासन करने लगता है। ठीक ही कहा गया है कि "जो सेवा करता है वह सेव्य बन जाता है।"

जहाँ तक आख़िरत का सम्बन्ध है, तो जो सेवा सत्यनिष्ठा और ख़ुलूस के साथ की जाए उसके प्रतिदान (सवाब) और पारितोषिक का अनुमान कौन कर सकता है? वह असीम और अगणित होगा। इस सीमित संसार में हम उसकी कल्पना भी नहीं कर सकते।

इस्लाम और मानव-जाति की सेवा

मानव-जाति की सेवा और उनके साथ सद्व्यवहार नैतिकता एवं शिष्टाचार का विषय है। नीतिशास्त्र से सम्बन्ध रखनेवाली समस्त विचारधाराओं ने इसे अपनी शिक्षाओं में स्थान दिया है। इसी प्रकार संसार के सभी धर्मों ने इसके महत्त्व को स्वीकार किया है। इस बात की पुष्टि और समर्थन उनके लेखपत्रों और धर्मग्रन्थों से होता है।

पैग़म्बरों की शिक्षा में जनसेवा

क़ुरआन-मजीद में अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से पूर्व के बहुत-से पैग़म्बरों और उनकी शिक्षाओं के उल्लेख बहुतायत से मिलते हैं, जिनमें हज़रत इबराहीम (अलै०) और उनकी सन्तति के इसराईली पैग़म्बरों का वर्णन कुछ विस्तारपूर्वक किया गया है। इससे पता चलता है कि अल्लाह के इन पैग़म्बरों ने बनी इसराईल से इनसानों के अधिकारों का ध्यान रखने, उनकी सेवा करने और उनके साथ सद्व्यवहार करने की भी प्रतिज्ञा ली थी। इस प्रतिज्ञा को क़ुरआन ने इन शब्दों में बयान किया है :

- "और याद करो जब हमने 'इसराईल' की संतान से यह पक्का वचन लिया कि अल्लाह के सिवा किसी की बन्दगी न करोगे, माँ-बाप के साथ अच्छा व्यवहार करोगे, और (उसी तरह) नातेदारों, अनाथों और मुहताजों के साथ भी (अच्छा व्यवहार करोगे) और यह कि आम लोगों से भली बात करोगे, नमाज़ क़ायम करोगे और ज़कात दोगे, लेकिन थोड़े आदमियों को छोड़कर तुम सब उससे फिर गए। और याद करो जब हमने तुमसे पक्का वचन लिया था कि तुम एक दूसरे का ख़ून न बहाओगे और न अपनों को घरों से निकालकर बेघर करोगे। फिर तुमने क़रार बाँधा और तुम इसके गवाह हो।" —क़ुरआन, 2 : 83, 84

ये आयतें स्पष्ट करती हैं कि अल्लाह तआला ने पहले इसराईल की संतान से यह वचन लिया कि वे केवल उसी की इबादत करेंगे और इनसानों के साथ शिष्टता का व्यवहार करेंगे। दूसरा वचन यह था कि वे अत्याचार और ज़्यादती करने से सदैव बचेंगे। शिष्टता का अत्याचार से कोई सम्बन्ध नहीं है। मानव-सेवा की भावना, निर्दयता और कठोरता के साथ मेल नहीं खा सकती। जो व्यक्ति दूसरों का रक्तपात करता फिरे वह उनके घावों के लिए मरहम उपलब्ध नहीं कराएगा। इसी प्रकार सेवा करनेवाला हाथ अत्याचार एवं अन्याय के लिए नहीं उठेगा। ये विभिन्न चरित्र हैं और विभिन्न भावनाओं के साथ अस्तित्त्व में आते हैं। सेवा से जन-समुदाय का जीवन जुड़ा हुआ है और अत्याचार ने बड़ी-बड़ी दमनकारी और उद्दण्ड क़ौमों की कमर इस प्रकार तोड़कर रख दी कि उनमें से बहुत-सी क़ौमों को फिर से उठने का अवसर न मिल

सका। क़ुरआन कहता है कि "इसराईल की संतान ने जीवन देनेवाले इस वचन और वादे का सम्मान नहीं किया। उसे तोड़ते और भंग करते रहे। उन्होंने अल्लाह की किताब के कुछ आदेशों का पालन किया और कुछ की अवज्ञा करते रहे। अपनी ही क़ौम के लोगों की नृशंस हत्या की, उन्हें घरों से निकाला और इस उद्देश्य के लिए दुश्मनों तक से साँठ-गाँठ और उनकी सहायता की। इससे उनकी शक्ति और एकता छिन्न-भिन्न हो गई। उन्हें दुनिया में भी अपमानित और घृणित होना पड़ा और आख़िरत की यातना में भी वे बुरी तरह ग्रस्त होंगे।" —क़ुरआन, 2 : 85

क़ुरआन और जनसेवा

क़ुरआन मजीद ने अल्लाह के चुने हुए बन्दों (पैग़म्बरों) की शिक्षाओं को जमा करके अपने पृष्ठों पर फैला दिया है। उसने अपने अवतरित होने के प्रारंभिक काल ही से, बुनियादी धारणाओं के बाद, दो बातों पर विशेष रूप से ज़ोर दिया है। एक यह कि इनसान का ख़ुदा से सम्बन्ध मज़बूत हो, वह केवल उसी की उपासना करे और उसके अलावा अपना सिर किसी के सामने न झुकाए। दूसरे यह कि इनसानों के साथ शिष्टता का व्यवहार करे और हक़दारों के हक़ का ध्यान रखे, माँ-बाप के साथ उत्तम व्यवहार करे, निकटतम सम्बन्धियों, पड़ोसियों, अनाथों, ग़रीबों और मुहताजों की जो भी आवश्यकताएँ पूरी कर सकता है, पूरी करे। कोई भी व्यक्ति जो उसकी सेवा का हक़दार हो और जिसकी सेवा करने का वह सामर्थ्य रखता हो वह उसकी सेवा से वंचित न रहे। यदि वह ताक़तवर है तो कमज़ोरों पर अत्याचार न करे, बल्कि उनको सहारा दे और उनकी सामर्थ्य और सांत्वना का साधन बने। लोगों की जान एवं संपत्ति और मान-प्रतिष्ठा की, अपनी जान एवं संपत्ति और मान-प्रतिष्ठा की तरह रक्षा करे। किसी के साथ धोखा और छल-कपट का व्यवहार न करे, बल्कि हर दशा में न्याय व इनसाफ़ तथा अमानत व ईमानदारी पर क़ायम रहे। उसका अस्तित्त्व समाज के लिए कष्ट एवं उत्पीड़न का कारण न हो, बल्कि सुख एवं राहत का साधन बने और उसके व्यक्तित्व से सबको लाभ पहुँचे, किसी को कष्ट न उठाना पड़े। क़ुरआन मजीद ने इन बातों को इतना महत्त्व दिया है कि बार-बार कहीं संक्षेप में और कहीं सविस्तार इनका उल्लेख किया है। इसका एक बड़ा अच्छा और उत्तम उदाहरण सूरा बनी-इसराईल के तीसरे और चौथे रुकू में मिलता है। कहा गया है :

- "अल्लाह का फ़ैसला है कि तुम उसके सिवा किसी की इबादत न करो, माँ-बाप के साथ अच्छा व्यवहार करो, यदि वे बुढ़ापे को पहुँच जाएँ तो विशेष रूप से उनका ध्यान रखो। उनके सामने सम्मान और विनम्रता के साथ झुक जाओ, कठोरता से पेश न आओ और उनके लिए दुआएँ करते रहो। नातेदारों, दरिद्रों और मुसाफ़िरों का हक़ अदा करो। यदि अपनी

दरिद्रता और निर्धनता के कारण उनकी सहायता न कर सको तो विनम्रतापूर्वक अपनी मजबूरी बता दो। अपनी संतान को इस भय से न मार डालो कि तुम उनके लिए खाने की व्यवस्था न कर सकोगे। अल्लाह तआला तुम्हें भी खिलाएगा और उन्हें भी। हत्या और वह भी अपनी सन्तान की हत्या ! यह तो बहुत ही बड़ा पाप है। व्यभिचार के निकट भी न जाओ यह अश्लील कर्म और जीवन का ग़लत मार्ग है। अल्लाह ने इनसान की जान को प्रतिष्ठित एवं आदर के योग्य ठहराया है। अतः जब तक हक़ और इनसाफ़ उसकी जान लेने की माँग न करें उसके रक्त से अपने हाथ दूषित न करो। अनाथ को बेसहारा समझकर उसका माल न हड़प जाओ। जब वह वयस्क (बालिग़) हो जाए तो उसका माल उसको सौंप दो। वचन और प्रतिज्ञा को पूरा करो, अल्लाह के यहाँ उसके विषय में पूछताछ होगी। नाप-तौल में कमी न करो। जिस बात का तुम्हें ज्ञान न हो उसके बारे में ज़बान न खोलो। याद रखो ! कान, आँख, दिल, दिमाग़ हर एक के विषय में अल्लाह पूछेगा। घमण्ड की चाल न चलो। तुम ठोकर मारकर न तो धरती को फाड़ सकते हो और न सिर उठाकर पहाड़ जैसी ऊँचाई को पहुँच सकते थे। ये सब बातें तुम्हारे रब की दृष्टि में अप्रिय हैं।"[1]—क़ुरआन, 17 : 23-38

क़ुरआन और हदीस में जनसेवा के विषय में एक ही नहीं, कई पहलुओं से ध्यान आकर्षित कराया गया है और उसपर ज़ोर दिया गया है। यहाँ हम उनमें से कुछ को स्पष्ट करने का प्रयत्न करेंगे।

अल्लाह के अनुग्रह के प्रति आभार

इस संसार में कुछ लोगों को हर प्रकार की सुख-सुविधाएँ प्राप्त हैं और कुछ लोग उनसे वंचित हैं। क़ुरआन मजीद सुविधा-प्राप्त लोगों से माँग करता है कि वे सुविधा से वंचित लोगों की सेवा करें। उन्हें हर प्रकार की सुविधाएँ उपलब्ध कराएँ और उनके जीवन को सुखमय बनाने में उनकी सहायता करें। अल्लाह ने जिस व्यक्ति को देखने के लिए आँख, सुनने के लिए कान, बोलने के लिए ज़बान, दौड़-धूप तथा परिश्रम करने के लिए ताक़तवर हाथ व बाज़ू, सोचने-समझने के लिए हृदय एवं मस्तिष्क और ज़िन्दगी गुज़ारने के लिए सुख-सामग्री प्रदान की है, उसका अनिवार्य कर्त्तव्य है कि जो व्यक्ति लाचार है, जिसको जीवन-साधन प्राप्त न हों और जो जीवन की दौड़-धूप में भाग लेने

---

1. यही बातें संक्षिप्त रूप से क़ुरआन की सूरा अनआम : 151, 152 में बयान हुई हैं। यहाँ जिन बातों की ताकीद की गई है उनमें से एक-एक के बारे में क़ुरआन में विभिन्न स्थानों पर ज़ोर दिया गया है। इसके उदाहरण इसी पुस्तक के पृष्ठों में मिलेंगे।

योग्य न हो, उसे असहाय न छोड़ दे कि वह भीख माँगे या आत्महत्या करने के लिए विवश हो जाए, बल्कि उसके जीवित रहने का उपयुक्त साधन और उसके सुख एवं चैन की सामग्री उपलब्ध कराए। चूँकि इनसान को जो कुछ मिलता है अल्लाह ही की ओर से मिलता है, अतः उसे उसी का आभारी होना चाहिए। उसको आभार प्रकट करने का एक तरीक़ा यह भी है कि उसके बन्दों के साथ अच्छा व्यवहार किया जाए और जो सेवा के पात्र हैं उनकी सेवा की जाए। अल्लाह की प्रदान की हुई हर नेमत (अनुग्रह) में उसके बन्दों का हक़ है। उस हक़ को अदा किए बिना उसका आभार प्रकट नहीं हो सकता। अल्लाह की नेमतों को प्राप्त करने के बाद यदि किसी के अन्दर उसकी सृष्टि की सेवा की भावना उत्पन्न न हो तो इसका अर्थ यह है कि उसका हृदय उन नेमतों के एहसास ही से ख़ाली है। क़ुरआन मजीद ने एहसास के इस अभाव पर कड़ी प्रताड़ना की है और उसके कुपरिणाम से अवगत कराया है। एक स्थान पर कहा है :

- "क्या हमने उसे दो आँखें और एक ज़बान और दो होंठ नहीं दिए और उसको (सत्य और असत्य के) दोनों मार्ग नहीं दिखाए? लेकिन वह घाटी पर नहीं चढ़ा। तुम जानते हो यह घाटी क्या है? गर्दन का छुड़ाना (ग़ुलाम आज़ाद कराना) या भूख के दिन खाना खिलाना, किसी क़रीबी यतीम (अनाथ) को या दुर्दशाग्रस्त मुहताज को। फिर वह उन लोगों में सम्मिलित हुआ जो ईमान लाए, जिन्होंने एक दूसरे को सब्र की ताकीद की और (इनसानों के साथ) दया करने की ताकीद की। यही लोग हैं जो (क़ियामत दिन अल्लाह के) दाईं ओर होंगे। और जिन्होंने हमारी 'आयतों' का इनकार किया वे बाईं ओरवाले हैं। वे चारों ओर से (नरक) की आग में बन्द कर दिए जाएँगे।" —क़ुरआन, 90 : 8-20

अल्लाह तआला ने इनसान पर असंख्य उपकार किए हैं। उपरोक्त आयतों में उनमें से कुछ ख़ास उपकारों का उल्लेख है। कहा गया है कि अल्लाह तआला ने उसे आँख-कान और हृदय एवं मस्तिष्क की अनुपम शक्तियाँ इसलिए प्रदान की हैं कि उसे एक दुर्गम घाटी से गुज़रना है, वह है ग़ुलामों को स्वतंत्र करना और यतीमों तथा मुहताजों की सहायता करना। इसके साथ यह भी आवश्यक है कि वह ईमानवालों में सम्मिलित हो जाए जो व्यवहारिक रूप से उस घाटी को तय कर रहे हैं, जिनके जीवन अल्लाह के मार्ग में सब्र और दृढ़ता के प्रमाण उपलब्ध करा रहे हैं और जो उसकी नसीहत भी कर रहे हैं जिनका व्यवहार, पीड़ितों, अधीनों, भूखों और प्यासों के साथ प्रेम एवं सहानुभूति का है और जो इस सहानुभूति की ताकीद दूसरों को करते हैं और उसका प्रचार करते हैं। यह मार्ग जन्नत (स्वर्ग) का है। इसका विरोध करनेवाले जहन्नम (नरक) की ओर बढ़ रहे हैं। वे उसी में पहुँचेंगे फिर उसके द्वार इस प्रकार बन्द

कर दिए जाएँगे कि वे कभी उससे निकल न सकेंगे।

अल्लाह के बन्दों की सेवा अल्लाह की सेवा है

इस्लाम ने सृष्टि की सेवा को स्रष्टा की सेवा बताया है। उसने कहा, अल्लाह के बन्दों की सहायता करना वास्तव में अल्लाह की सहायता करना है, उनके काम आना अल्लाह के काम आना है। यदि आपके सामने अल्लाह का कोई बन्दा हाथ फैलाए और आप उसका हाथ ख़ाली लौटा दें तो मानो आपने अल्लाह के हाथ को ख़ाली लौटा दिया। कोई बीमार आपकी सहायता का मुहताज हो और आपने उसकी सहायता से इनकार किया तो मानो अल्लाह की सहायता से इनकार कर दिया। अल्लाह को प्रसन्न करने के लिए आवश्यक है कि उसके बन्दों को प्रसन्न किया जाए और उन्हें राहत पहुँचाई जाए। आसमानवाला अपनी रहमतें उसी समय उतारता है जब धरतीवालों पर दया एवं सहानुभूति का व्यवहार किया जाए। एक हदीस में इसी बात को बड़े ही प्रभावकारी ढंग से बयान किया गया है:

- "अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया : क़ियामत के दिन अल्लाह तआला इनसान से कहेगा, ऐ आदम के बेटे ! मैं बीमार पड़ा रहा परन्तु तू मेरा हाल पूछने नहीं आया। इनसान घबराकर कहेगा : ऐ मेरे रब ! तू तो सारे जगत का रब है, तू बीमार कब था और मैं तेरा हाल कैसे पूछता ? तब अल्लाह तआला फ़रमाएगा : क्या तू न जानता था कि मेरा फ़लाँ बन्दा बीमार था, परन्तु तू उसका हाल पूछने नहीं गया। यदि तू उसके पास जाता तो वहाँ मुझे पाता। फिर अल्लाह तआला फ़रमाएगा : ऐ आदम के बेटे ! मैंने तुझसे खाना माँगा परन्तु तूने मुझे खाना नहीं दिया। इनसान कहेगा : ऐ सारे जहान के रब ! तू कब भूखा था और मैं तुझे खाना कैसे खिलाता ? अल्लाह फ़रमाएगा : क्या तुझे याद नहीं कि मेरे फ़लाँ बन्दे ने तुझसे खाना माँगा था, परन्तु तूने उसे खाना नहीं खिलाया। यदि तू उसकी माँग पूरी करता तो आज यहाँ उसका अच्छा बदला पाता। इसी प्रकार अल्लाह तआला फ़रमाएगा : ऐ आदम के बेटे ! मैंने तुझसे पानी माँगा, परन्तु तूने मुझे पानी नहीं पिलाया। इनसान कहेगा : ऐ दोनों जहान के रब ! तू कब प्यासा था और मैं तुझे पानी कैसे पिलाता ? अल्लाह फ़रमाएगा : मेरे फ़लाँ बन्दे ने तुझसे पानी माँगा था, परन्तु तूने उसकी प्यास बुझाने से इनकार कर दिया था। यदि तूने उसकी प्यास बुझाई होती तो आज यहाँ उसका अच्छा फल पाता।" —सहीह मुसलिम

जनसेवा की श्रेष्ठता तथा महत्त्व के लिए यह बात बहुत पर्याप्त है कि वह स्रष्टा की सेवा है और इसकी उपेक्षा करना स्रष्टा की सेवा से लापरवाही बरतने के समान है।

हर दशा में सेवा की भावना हो

इस्लाम यह भावना पैदा करता है कि इनसान इस प्रकार जीवन बिताए कि उसके व्यक्तित्व से भलाई के स्रोत फूटें, उसकी शारीरिक और मानसिक योग्यताएँ और आर्थिक साधन अन्य लोगों के काम आएँ, अपनी पहुँचभर वह उनकी भौतिक और नैतिक सहायता करे, वह घर से उपद्रव और बिगाड़ मचाता हुआ न निकले, बल्कि इनसानों के शुभचिन्तक और भलाई चाहनेवाले के रूप में सामने आए। वह जहाँ बैठे शान्ति एवं सुख का सन्देश फैलाता रहे, दूसरों की कठिनाइयों को दूर करे और उनके धार्मिक एवं नैतिक सुधार की कोशिश में लगा रहे।

इस्लाम व्यक्ति को समाज की भौतिक और नैतिक सेवा पर जिस प्रकार उभारता और उसके अन्दर उसकी भावना पैदा करता है, उसका अनुमान निम्नलिखित हदीस से लगाया जा सकता है :

- हज़रत अबू सईद (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया : "रास्तों में बैठने से परहेज़ करो।" सहाबा ने अर्ज़ किया : "इसके बिना तो हमारा काम ही नहीं चलता, यह हमारी बैठकें हैं, इनमें हम बातचीत करते हैं।" आप (सल्ल०) ने फ़रमाया : "यदि तुम बैठना ज़रूरी ही समझते हो तो रास्ते का हक़ अदा करो।" सहाबा ने पूछा : "रास्ते का हक़ क्या है?" आप (सल्ल०) ने फ़रमाया : "नज़रें नीची रखना, दूसरों को कष्ट देने से बचना, सलाम का जवाब देना, नेकी का आदेश करना और बुराई से रोकना।"
—बुख़ारी, मुसलिम

यह हदीस शब्दों के थोड़े-से अन्तर के साथ कुछ अन्य सहाबा (रज़ि०) से भी उल्लिखित है।

हज़रत अबू तलहा (रज़ि०) की रिवायत में "सलाम का जवाब देना" के बाद "अच्छी बात कहने" का उल्लेख है। —मुसलिम

हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) की रिवायत में हदीस के अन्त में शब्द 'इरशादुस्सबील' अधिक है, जिसका अर्थ 'रास्ता दिखाना' (अर्थात् पूछनेवाले को रास्ता बताना) है।
—अबू दाऊद

एक रिवायत में है :

- "यदि रास्ते में बैठो तो फ़रियाद करनेवाले की फ़रियाद सुनो और भटकनेवाले को रास्ता बताओ।"
—अबू दाऊद

यह हदीस बताती है कि एक मोमिन पर समाज की ओर से जो ज़िम्मेदारियाँ लागू होती हैं उसका, रास्ते और बाज़ार में, सभाओं और महफ़िलों में, हर स्थान पर ध्यान रखना

चाहिए। वह स्त्रियों के सतीत्व और शील का रक्षक है। अतः किसी मर्द को किसी औरत पर बुरी नज़र डालने की अनुमति नहीं है। वह दूसरों के कष्ट दूर करने के लिए पैदा हुआ है, उसके व्यक्तित्व से किसी को किसी भी प्रकार का कष्ट नहीं पहुँचना चाहिए। जैसे आने-जाने में रुकावट डालना, गन्दगी फैलाना, रास्ता चलनेवालों से उलझना और गाली-गलौज करना आदि। मार्ग में कष्ट देने के जो भी तरीक़े हो सकते हैं उन सबसे उसका दामन पाक होना चाहिए। यदि कोई उसको अमन और सलामती की दुआ दे (अर्थात सलाम करे) तो उसे तुरन्त उसका उत्तर देना चाहिए, ताकि वह उसकी ओर से इतमीनान महसूस करे। वह जहाँ भी बैठे मारूफ़ यानी नेकी पर लोगों को उभारे और बुराई से रोके। इससे समाज में नेकियों को बढ़ावा मिलेगा और वह बुराइयों से सुरक्षित रहेगा। जब कोई व्यक्ति कोई ग़लत क़दम उठाने का इरादा करेगा तो उसे महसूस होगा कि समाज में उसका प्रतिकार करने और पकड़ने की शक्ति मौजूद है। रास्ते का यह भी हक़ है कि इनसान गाली-गलौज और कड़वी बात का प्रदर्शन न करे, बल्कि उसकी बातचीत के ढंग में शिष्टाचार और पवित्रता पाई जाए और वह प्रत्येक से मधुर बोल बोले। इससे बाज़ार के बहुत-से झगड़े और हंगामे समाप्त हो सकते हैं। पीड़ितों की सहायता करना और भटकनेवालों का मार्गदर्शन करना भी उसकी ज़िम्मेदारी है।

इस प्रकार इस्लाम ने प्रेरणा भी दी और ताकीद भी की कि समाज का जो व्यक्ति भी किसी के दुख-दर्द में काम आ सकता है, अवश्य काम आए। कोई व्यक्ति भूखा-प्यासा और कपड़ों का मुहताज है तो उसे भोजन, पानी और कपड़े उपलब्ध कराए, वह बेघर है तो उसके लिए मकान का प्रबन्ध करे, वह बीमार है तो उसका उपचार और सेवा करे और अगर वह बेरोज़गार है तो उसे रोज़गार से लगाए। वह अज्ञान और अशिक्षित है तो उसे ज्ञान और शिक्षा से सुसज्जित करे, वह पीड़ित और मज़लूम है तो दूसरों के अत्याचारों से उसकी रक्षा करे। इस भावना को निखारने और सँवारने के लिए इस्लाम ने अत्याचार व अन्याय की निन्दा की, उसकी बुराई स्पष्ट की और इस बात पर बल दिया कि कोई भी व्यक्ति किसी की कमज़ोरी, दुर्बलता, दरिद्रता और अज्ञानता का लाभ उठाकर शोषण न करे, बल्कि उसे लाभ पहुँचाने और उसके दोष और कमी को दूर करने की कोशिश करे। उसे किसी कष्ट में ग्रस्त देखकर प्रसन्न न हो, बल्कि उसके कष्ट को अपना कष्ट समझे और जिन कष्टों में वह ग्रस्त है उनसे मुक्ति दिलाने में उसकी सहायता करे। इस प्रकार इस्लाम एक ऐसा समाज उपलब्ध करता है जिसमें अत्याचार के विरुद्ध तीव्र घृणा पाई जाए और हर ओर न्याय एवं उपकार की भावना का बोलबाला हो।

इनसानों की सेवा और उनकी भलाई का हर प्रयत्न इस्लाम की दृष्टि में इबादत है। अगले अध्याय में इसका सविस्तार वर्णन आएगा।

सेवा भी इबादत है

कुरआन के अनुसार इनसान के पैदा किए जाने का असल उद्देश्य 'इबादत' है।

इबादत अल्लाह तआला के सामीप्य और उसकी प्रसन्नता की प्राप्ति के लिए की जाती है। यह शारीरिक भी होती है और आर्थिक भी। शारीरिक इबादत ज़बान के शब्दों और शारीरिक गतिविधियों द्वारा होती है और आर्थिक इबादत में इनसान अल्लाह के दरबार में माल-दौलत की भेंट पेश करता है। आर्थिक इबादत के उद्देश्यों में से एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य अल्लाह की सृष्टि (मख़लूक़) की सेवा, सहायता और सहयोग है। शारीरिक इबादत में इनसान अल्लाह तआला से सम्बन्ध को सरलतापूर्वक अनुभव करता है, परन्तु आर्थिक इबादत में उसे इस सम्बन्ध का अनुभव कुछ कम ही हो पाता है। उसे महसूस करने के लिए आवश्यक है कि इबादत की भावना से सेवा की जाए और अल्लाह के किसी बन्दे की सहायता करते समय अल्लाह के सामीप्य की कल्पना को जीवित तथा जागृत रखा जाए। इससे इनसान को भौतिक और आर्थिक कल्याण के काम करते हुए भी इबादत का आनन्द प्राप्त हो सकता है।

इस्लाम के निकट जनसेवा कोई दुनियादारी का काम नहीं है, बल्कि मात्र इबादत है। इस वास्तविकता को समझने के लिए उसकी इबादत की पूरी व्यवस्था को सामने रखना होगा।

नमाज़ और ज़कात का सम्बन्ध

नमाज़ शारीरिक इबादत है और ज़कात आर्थिक इबादत। नमाज़ बन्दे की ओर से अल्लाह की महानता और बुज़ुर्गी तथा अल्लाह के प्रति अपनी दासता की घोषणा है और ज़कात इस बात को प्रकट करती है कि इनसान के हृदय में दया एवं सहानुभूति की भावना मौजूद है तथा वह अन्य लोगों के लिए निस्स्वार्थ अपना धन ख़र्च कर सकता है। कुरआन में नमाज़ और ज़कात का सामान्यतः एक साथ उल्लेख किया गया है। दोनों पर समान रूप से ज़ोर दिया गया और उनकी बार-बार ताकीद की गई है। इसका अर्थ यह है कि उसके निकट आर्थिक इबादत शारीरिक इबादत से कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। वह अल्लाह को प्रसन्न करने के लिए जिस प्रकार शारीरिक इबादत को आवश्यक समझता है उसी प्रकार आर्थिक इबादत को भी अनिवार्य ठहराता है। वह जिस 'दीन' (धर्म) की माँग करता है वह केवल यह नहीं है कि इनसान अल्लाह के दरबार में श्रद्धा एवं प्रेम के साथ झुक जाए, बल्कि यह भी है कि इनसान अपनी अर्जित की हुई संपत्ति में अल्लाह के बन्दों का हक़ स्वीकार करे और ज़रूरतमन्दों, दुखियों पर ख़र्च करे :

- "और उन्हें हुक्म बस इसी का दिया गया था कि अल्लाह की इबादत करें अपने दीन को उसी के लिए एकनिष्ठ करके, एकाग्र होकर नमाज़ क़ायम करें, और ज़कात दिया करें। और यही ठोस दीन है।" —क़ुरआन, 98 : 5

आयत में एकनिष्ठता (ख़ुलूस) और एकाग्रता के साथ इबादत करने का आदेश देने के बाद उसकी व्याख्या 'नमाज़' और 'ज़कात' के द्वारा की गई है। यह इस वास्तविकता को प्रकट करता है कि उनकी पाबन्दी करने ही से इबादत का हक़ अदा हो सकता है। इन विशेषताओं के बिना इबादत की कोई कल्पना नहीं है। कुछ अन्य स्थानों पर इबादत के साथ 'ख़ैर' (अच्छाई-भलाई) का शब्द प्रयुक्त हुआ है जो अधिक व्यापक है। अल्लाह का आदेश है :

- "ऐ ईमान लानेवालो ! झुको, और सजदा करो और अपने रब की इबादत करो और नेक काम करो, इससे आशा है कि तुम्हें सफलता प्राप्त होगी।"

—क़ुरआन, 22 : 77

यहाँ इबादत से पहले झुकने और सजदा करने अर्थात् नमाज़ अदा करने का आदेश दिया गया है और इबादत के बाद 'ख़ैर' पर चलने की हिदायत की गई है। हज़रत अब्दुल्लाह बिन अब्बास (रज़ि०) कहते हैं कि 'ख़ैर' से अभिप्राय निकटतम सम्बन्धियों के साथ भलाई करना और उच्च नैतिकता है।[1] ये समस्त भलाई के काम इबादत के अन्दर आ जाते हैं। इनका उल्लेख अलग से इसलिए किया गया है कि इनकी ओर विशेष रूप से ध्यान आकृष्ट कराया जाए। इसी उद्देश्य के तहत इबादत से अलग नमाज़ का भी उल्लेख किया गया है। हालाँकि इसके इबादत, बल्कि वास्तविक इबादत होने में कोई सन्देह नहीं है।

क़ुरआन मजीद में नमाज़, ज़कात और नेकी के कामों के बाद इबादत का ज़िक्र इस प्रकार भी आया है कि उसके दामन में ये तमाम नेकियाँ सिमट आई हैं। एक जगह पर हज़रत इबराहीम (अलै०) और उनके वंश के कुछ पैग़म्बरों के विवरण के बाद फ़रमाया गया :

- "और हमने उन्हें इमाम (नायक) बनाया, जो हमारे हुक्म से (लोगों को सीधा)

---

1. इमाम राज़ी (रह०) इस कथन को उद्‌धृत करने के बाद कहते हैं कि ख़ैर पर चलने के दो रूप हैं, एक, अल्लाह की श्रेष्ठता और सम्मान को प्रकट करना और दूसरे, उसके बन्दों की सेवा करना है। अर्थात् नमाज़ के बाद इबादत का व्यापक आदेश दिया गया है। इसके बाद ख़ैर या भलाई का आदेश है जो इससे भी अधिक व्यापक अर्थों में है। (तफ़सीर कबीर 6/208 प्राचीन एडीशन) यदि इबादत का अर्थ केवल पूजा-अर्चना या बन्दगी का नहीं वरन् सम्पूर्ण जीवन में अल्लाह की आज्ञाकारिता से है तो इसका क्षेत्र भी ख़ैर के क्षेत्र की भाँति बहुत व्यापक हो जाएगा। इबादत का यही व्यापक अर्थ सही है।

मार्ग दिखाते थे और हमने उनकी ओर नेक कामों के करने और 'नमाज़' क़ायम करने और ज़कात देने की 'वह्य' (प्रकाशना) की, और वे हमारे उपासक थे।"

—क़ुरआन, 21 : 73

इनसानों की सेवा और भलाई के जो काम किए जाते हैं उनकी श्रेष्ठता और उच्चता का इससे बड़ा प्रमाण और क्या हो सकता है कि वे ख़ुदा की इबादत बन जाते हैं।

रोज़ा का फ़िद्या (अर्थदण्ड)

आर्थिक इबादत कभी शारीरिक इबादत का बदला बन जाती है और शारीरिक इबादत में जो त्रुटि और कमी रह जाए उसकी भी उससे क्षतिपूर्ति होती रहती है।

नमाज़ की तरह रोज़ा भी एक शारीरिक इबादत है जिसमें इनसान अल्लाह के लिए भूखा-प्यासा रहता है। अपनी इच्छाओं और भावनाओं पर नियंत्रण और कन्ट्रोल रखने का प्रयत्न करता है। इस विषय का एक प्रारंभिक आदेश यह है :

- "और जो लोग रोज़े का सामर्थ्य रखते हैं फिर भी रोज़ा नहीं रख़ते उनपर एक रोज़े का बदला एक मुहताज को खाना खिलाना है—फिर जो कोई स्वेच्छा से और भलाई करे, तो वह उसके लिए अच्छा है : और यह कि तुम रोज़ा रखो तो यह तुम्हारे लिए ज़्यादा अच्छा है, यदि तुम समझो।"

—क़ुरआन, 2 : 184

जो व्यक्ति रोज़ा रख सकता था उसे भी इस आयत के अनुसार अनुमति थी कि रोज़ा न रखे और इसके बदले में कम से कम एक मुहताज को खाना खिला दे। यदि इससे अधिक मुहताजों की सेवा कर सके तो अधिक पुण्य (सवाब) का कारण होगा, परन्तु यह अनिवार्य नहीं है। इसी के साथ यह भी स्पष्ट कर दिया गया था कि रोज़ा रखना हर दशा में उत्तम है। बाद में यह अनुमति समाप्त कर दी गई और रमज़ान के रोज़े सब पर अनिवार्य कर दिए गए। परन्तु मुसाफ़िर और रोगी को अनुमति दी गई कि वे छूटे हुए रोज़ों को बाद में पूरा कर लें। (देखें—क़ुरआन 2: 185)

हदीसों से मालूम होता है कि रोज़े रखने की अनिवार्यता से वे लोग मुक्त हैं जो अपनी वृद्धावस्था या किसी भयानक रोग के कारण रोज़ा रखने की शक्ति ही न रखते हों। उनके लिए फ़िद्या (अर्थदण्ड) का आदेश बाक़ी रखा गया है और हिदायत दी गई है कि वे एक रोज़े के बदले एक मुहताज को दोनों समय खाना खिला दें।

—बुख़ारी, तफ़सीर इब्न कसीर 1/214-215

इसका तात्पर्य यह है कि जो लोग रोज़ा न रख सकते हों उनके लिए धन का फ़िद्या रोज़े का बदला है। वे पीड़ितों और मुहताजों की सहायता करके रोज़े की अनिवार्यता से भारमुक्त हो जाते हैं।

रोज़ा और सदक़-ए-फ़ित्र

रमज़ान के रोज़ों के बाद सदक़-ए-फ़ित्र रखा गया है और इसका कारण हज़रत अब्दुल्लाह बिन अब्बास (रज़ि०) की एक रिवायत में इस प्रकार बयान किया गया है :

- "अल्लाह के रसूल ने सदक़-ए-फ़ित्र अनिवार्य किया है जो रोज़े को व्यर्थ की हरकतों और अप्रिय बातों के कुप्रभाव से, जो रोज़े की हालत में हो गई हों, पाक करता है और यह मुहताजों की रोज़ी है।" —अबू दाऊद

रोज़ों में अकस्मात् या अनजाने में कभी-कभी व्यर्थ और बेहूदा हरकतें हो ही जाती हैं। यह हदीस बताती है कि सदक़-ए-फ़ित्र के द्वारा मुहताजों की जो थोड़ी-सी सहायता हो जाती है उससे उन हरकतों की गन्दगी धुल जाती है और रोज़े पाक-साफ़ हो जाते हैं।

इस विषय के कुछ अन्य आदेश यहाँ बयान किए जा रहे हैं जिनमें आर्थिक इबादत को शारीरिक इबादत के बराबर या उसका प्रतिरूप ठहराया गया है।

जब हज में फ़िद्या अनिवार्य (वाजिब) होता है

नमाज़ और रोज़े की तरह हज विशुद्ध शारीरिक इबादत नहीं है, क्योंकि उसमें धन भी खर्च होता है। इस विचार से उसमें शारीरिक और आर्थिक इबादत का एक सुन्दर सामंजस्य पाया जाता है और वह दोनों के महत्त्व को प्रकट करता है, परन्तु आर्थिक इबादत की तुलना में उसका शारीरिक इबादत होना अधिक स्पष्ट है। हज के बारे में क़ुरआन में है :

- "और 'हज' और 'उमरा' को अल्लाह के लिए पूरा करो। यदि तुम रास्ते में रोक दिए जाओ (बीमारी या रास्ते की ख़राबी से) तो जो क़ुरबानी का जानवर सुलभ हो उसे (या उसकी क़ीमत) भेज दो, और अपने सिर का मुंडन न करो (एहराम न खो लो) जब तक कि क़ुरबानी अपने स्थान पर न पहुँच जाए। हाँ, जो कोई तुम में बीमार हो या उसके सिर में कोई तकलीफ़ हो तो (अपना सिर मुंडवाले और) उसके लिए रोज़े या सदक़ा या क़ुरबानी के रूप में 'फ़िद्या' (अर्थदण्ड) है। और जब निश्चिन्त हो (चाहे ख़तरा टल गया हो या ख़तरा पेश ही न आया हो) तो जो कोई हज (का समय आने) तक 'उमरा' से फ़ायदा उठाए, तो वह जो क़ुरबानी सुलभ हो पेश करे, और अगर क़ुरबानी सुलभ न हो तो तीन दिन के रोज़े 'हज' के दिनों में रखे और सात रोज़े जब तुम वापस हो; ये पूरे दस दिन हुए। यह आदेश केवल उनके लिए है जिनका परिवार 'मसजिद हराम' के निकट (आबाद) न हो (बल्कि वह अपनी मीक़ात से बाहर का रहनेवाला हो)। और अल्लाह से डरते रहो, और जान लो कि अल्लाह (उल्लंघनकारियों को) कड़ी यातना देनेवाला है।" —क़ुरआन, 2 : 196

इस आयत में हज से सम्बन्धित जो आदेश दिए गए हैं, यहाँ उनकी व्याख्या की आवश्यकता नहीं है। परन्तु विचाराधीन विषय से सम्बन्धित जो बात नोट करने की है वह यह है कि इहराम की हालत में बालों का मुंडन कराना वर्जित है। आयत में कहा गया है कि यदि किसी कष्ट के कारण बालों का मुंडन कराना पड़े तो आदमी रोज़ा या क़ुरबानी या सदक़ा के रूप में फ़िदया अदा करे। इसमें आर्थिक और शारीरिक इबादतें समकक्ष हो गई हैं। इसी प्रकार जो व्यक्ति 'हज' में 'तमत्तो' या 'क़िरान' करे उसे क़ुरबानी का आदेश दिया गया है और यदि क़ुरबानी का जानवर उपलब्ध न हो तो दस रोज़े रखने का आदेश दिया गया है।

ज़िहार से रुजू का तरीक़ा

अरब में रिवाज था कि लोग पत्नी से नाराज़ होते तो उसे माँ के तुल्य ठहराकर हमेशा के लिए पति-पत्नी सम्बन्ध तोड़ लेते थे। इसे ज़िहार कहा जाता था। क़ुरआन ने इस ग़लत और अशिष्ट तरीक़े की आलोचना की और कहा कि पत्नी कभी माँ नहीं हो सकती। इससे रुजू (लौटने) का तरीक़ा इस प्रकार बयान किया गया :

- "और जो लोग अपनी पत्नियों से ज़िहार करते हैं फिर जो कुछ उन्होंने कहा उससे लौटते हैं, तो एक गरदन आज़ाद करनी होगी इससे पहले कि उन दोनों में समागम हो। इससे तुम्हें नसीहत की जाती है, और अल्लाह उसकी ख़बर रखता है जो कुछ तुम करते हो। फिर जिसे (आज़ाद करने को) ग़ुलाम प्राप्त न हो, तो लगातार दो महीने के रोज़े रखने होंगे। इससे पहले कि उन दोनों में समागम हो, फिर जिससे यह न हो सके तो (उसे) साठ मुहताजों को खाना खिलाना होगा।"
—क़ुरआन, 58 : 3, 4

आयत में ज़िहार से लौटने का यह उपाय बताया गया है कि पहले कफ़्फ़ारा (प्रायश्चित) स्वरूप एक ग़ुलाम आज़ाद किया जाए, इसका सामर्थ्य न हो तो लगातार साठ रोज़े रखे जाएँ और यह भी न हो सके तो साठ मुहताजों को खाना खिलाया जाए। इसके बिना पत्नी से सम्बन्ध स्थापित नहीं हो सकते।

सौगंध का प्रायश्चित (क़सम का कफ़्फ़ारा)

किसी बात की ताकीद और अपने संकल्प को प्रकट करने के लिए क़सम खाई जाती है। यदि ऐसा न हो तो क़सम खाना निरर्थक और व्यर्थ होगा। उसके तोड़ने पर अल्लाह की ओर से कोई पूछताछ न होगी। परन्तु किसी बात को पक्का करने के लिए जो क़सम खाई जाए उसके तोड़ने का कफ़्फ़ारा देना होगा। यह कफ़्फ़ारा इन शब्दों में बयान हुआ है :

● "इसका प्रायश्चित दस मुहताजों को औसत दर्जे का वह खाना खिला देना है जो तुम अपने घरवालों को खिलाते हो, या फिर उन्हें कपड़े पहनाना, या एक ग़ुलाम आज़ाद करना। और जिस आदमी को इनमें से किसी की ताक़त न हो तो वह तीन दिन के रोज़े रखे।" —क़ुरआन, 5 : 89

इन समस्त आदेशों में ग़ुलाम आज़ाद करने, मुहताजों को खाना-कपड़ा देने और क़ुरबानी के द्वारा ग़रीबों की सहायता करने को कुछ पहलुओं से रोज़े के समान ही हैसियत दी गई है या उसे उनके बदले के रूप में रखा गया है।

ख़ुदा से इनसान के सम्बन्ध को सुदृढ़ करने में शारीरिक इबादत को असाधारण महत्व प्राप्त है। इसके बिना कभी भी किसी को ख़ुदा का सामीप्य प्राप्त नहीं हो सकता। क़ुरआन मजीद ने जनसेवा और इनसानों के साथ अच्छे व्यवहार को कुछ इबादतों का समकक्ष ठहराकर और उसके द्वारा उनकी कमी को दूर करके उसे वह स्थान दिया है कि धर्म की व्यवस्था में इससे उच्चतर स्थिति की कल्पना नहीं की जा सकती।

सेवा सबकी की जाए

स्वार्थी लोग

इस संसार में आपको ऐसे लोग भी मिलेंगे जिनके सामने केवल अपना व्यक्तित्व और स्वार्थ होता है। वे हर काम में अपना ही हित देखते हैं, किसी दूसरे के हित से उन्हें कोई रुचि नहीं होती। वे स्वयं तो प्रत्येक से लाभ उठाना चाहते हैं, परन्तु किसी और के काम आना नहीं चाहते। किसी के दुख, दर्द और मुसीबत की उन्हें कोई चिन्ता नहीं होती और उसकी सेवा की भावना उनमें नहीं उभरती। यदि उभरती भी है तो वे विभिन्न बहानों से उसे दबाने में सफल हो जाते हैं। वे अपने निजी स्वार्थों के लिए जीते हैं और जीवनभर यही स्वार्थ उनकी भाग-दौड़ का केन्द्र- बिन्दु बने रहते हैं। उनसे किसी इनसानी और समाजी लाभ की आशा मुश्किल ही से की जा सकती है।

परिवारजनों के दास

बहुत-से लोगों में सेवा की भावना तो होती है परन्तु उनकी दृष्टि सीमित होती है। उन्हें अपने व्यक्तित्व की भाँति, बल्कि इससे भी कुछ अधिक अपनी पत्नी, बच्चों, परिवार और क़बीलेवालों से हार्दिक सम्बन्ध होता है। परन्तु यही सम्बन्ध अन्य व्यापक सम्बन्धों की राह में रुकावट बन जाता है। उनके सामने केवल अपने निकटतम सम्बन्धियों का हित होता है, वे सदा उन्हीं की भलाई और कल्याण के बारे में सोचते हैं और रात-दिन उन्हीं की सेवा में लगे रहते हैं। उनके अलावा उन्हें किसी और के लाभ-हानि से कोई लेना-देना नहीं होता और अपने परिवारजनों को लाभ पहुँचाने के लिए दूसरे लोगों को हानि पहुँचाने में भी उन्हें कोई संकोच नहीं होता।

इस्लाम न तो व्यक्ति के महत्त्व को कम करता है और न ही परिवार और क़बीले की उपेक्षा करता है। उसने दोनों के अधिकार और ज़िम्मेदारियों को स्पष्ट कर दिया है, परन्तु वह जनसेवा और भलाई की व्यापक धारणा देता है। वह यह भावना जागृत करता है कि इनसान पर केवल उसका व्यक्तित्व और उसके परिवार ही के हक़ नहीं होते, बल्कि उस समाज के भी उसपर अधिकार होते हैं जिसका वह एक सदस्य है। उस समाज का निर्माण उम्मत की परिकल्पना के अन्तर्गत हुआ है।

समुदाय (उम्मत) की सेवा

इस्लाम के माननेवाले सभी लोग एक उम्मत हैं। उनके बीच धार्मिक बन्धुत्व पाया जाता है, ख़ून के सम्बन्ध के बिना भी वे एक-दूसरे के भाई हैं। वर्ण, नस्ल, भाषा और

क्षेत्र के अन्तर के बावजूद उनमें का हर व्यक्ति अपने अधिकार रखता है। वह चाहे नातेदार हो या न हो, पड़ोसी हो या दूर का रहनेवाला, मज़दूर और कारीगर हो अथवा व्यापारी और उद्योगपति, शिक्षित हो या अशिक्षित, परिचित हो या अपरिचित, उसके अपने अधिकार सुरक्षित हैं जिनसे उसे वंचित नहीं किया जा सकता। इन अधिकारों में नसीहत करना और हित एवं कल्याण की कामना, प्रेम और सहानुभूति, आवश्यकता के अनुसार सेवा, कठिनाइयों में सहयोग और अच्छा व्यवहार सम्मिलित हैं। इसकी श्रेष्ठता एक हदीस में इस प्रकार बयान हुई है :

- हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) की रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया : "जो व्यक्ति दुनिया में किसी मोमिन के कष्टों में से कोई कष्ट दूर करे, अल्लाह तआला क़ियामत में उसके कष्टों में से कोई कष्ट दूर करेगा। जो व्यक्ति किसी कठिनाई में ग्रस्त आदमी को उसकी कठिनाई से निकालेगा, अल्लाह दुनिया और आख़िरत (परलोक) में उसके लिए आसानी उपलब्ध कराएगा। जो किसी मुसलमान के अंग ढकने के लिए कपड़ों का प्रबन्ध करेगा, अल्लाह तआला दुनिया और आख़िरत में उसे कपड़े उपलब्ध कराएगा। अल्लाह तआला अपने बन्दे की सहायता को तत्पर रहता है जब तक वह बन्दा अपने भाई की सहायता में लगा रहता है।" —मुसलिम

इस हदीस में किसी मुसलमान की कठिनाइयों में काम आने और आवश्यकता पड़ने पर उसको सहयोग देने का प्रतिदान और उत्तम फल बयान हुआ है। इस्लाम ने इस सहयोग को बड़ा महत्त्व दिया है। वह पूरी उम्मत (समुदाय) को एक शरीर के अंगों की भाँति परस्पर सुसम्बद्ध देखना चाहता है कि उसके किसी भी अंग के दर्द को पूरा शरीर अनुभव करे और उसे दूर करने का प्रयत्न करे।[1]

उम्मत की कल्पना से क़ौमियत (राष्ट्रीयता) की भावना नहीं उभरती

यहाँ पाठक के मन में यह बात पैदा हो सकती है कि इस प्रकार उम्मत की कल्पना को उभारने और उसकी सेवा एवं भलाई पर इतना ज़ोर देने से क़ौमी भावनाएँ पल्लवित होती हैं और उन्हें बल मिलता है। यह बड़ी भयानक बात है। क्योंकि जहाँ क़ौमी और जातीय भावनाएँ पलती हैं वहाँ इसमें सन्देह नहीं कि क़ौम की पहचान बाक़ी रहती है, बड़े पैमाने पर उसकी सेवा और उसके हितों की सुरक्षा भली-भाँति होती है, किन्तु इससे क़ौमी पक्षपात और तंगदिली भी उभरती है। इस भावना के तहत व्यक्ति

---

1. विस्तार के लिए लेखक का लेख 'ईमानवालों के बाहमी ताल्लुक़ात' (उर्दू), प्रकाशित, मासिक 'ज़िन्दगी-ए-नव' नई दिल्ली, जनवरी 1989 ई० देखें।

इतना ही नहीं कि अपनी क़ौम के हितों के अलावा अन्य किसी क़ौम के हितों के विषय में नहीं सोचता, बल्कि उसका ज़ेहन उसके विरुद्ध काम करने लगता है। क़ौमियत की धारणा से विभिन्न क़ौमों के बीच दूरी उत्पन्न हुई है और उनके बीच फ़ासले बढ़े हैं। हितों के संघर्ष ने दुश्मनी और नफ़रत की दीवारें खड़ी कर दी हैं। इस्लाम की उम्मत की धारणा से भी क़ौमियत की भावनाएँ उभरें तो इसकी प्रशंसा नहीं की जा सकती।

यह एक निराधार कल्पना है जिसका इस्लाम की उम्मत की धारणा से कोई सम्बन्ध नहीं है। किसी क़ौम, पार्टी या जमाअत के लोगों को इस बात पर उभारने से कि वे एक-दूसरे के दुख-दर्द को महसूस करें, कठिनाइयों में काम आएँ और आपस में सहयोग एवं सहानुभूति के व्यवहार को अपनाएँ, उनके अन्दर दूसरी क़ौमों के ख़िलाफ़ पक्षपात एवं शत्रुता कदापि नहीं पैदा हो सकती। यह तो उस क़ौम के साथ जिसका एक व्यक्ति अंश व अंग है, कल्याण चाहने की माँग और उसका ऐसा नैतिक प्रशिक्षण है जो किसी अन्य व्यक्ति या दल के साथ सहानुभूति एवं अच्छे व्यवहार के मार्ग में बाधक नहीं है। जिस प्रकार व्यक्ति अपने परिवार और क़बीले का हमदर्द होते हुए पूरी क़ौम के साथ हमदर्दी का रवैया अपना सकता है, उसी प्रकार यह भी संभव है कि एक व्यक्ति के अन्दर अपनी क़ौम का भी दर्द हो और वह पूरी मानवजाति के लिए भी बेचैन हो। इस्लाम जब अपने अनुयायियों को एक दूसरे की सेवा पर विशेष रूप से उभारता है तो इसका मतलब यह कभी नहीं होता कि उनके दूसरी क़ौमों के प्रति सेवा-भाव के महत्त्व या अनिवार्यता को कम करता है।

संपूर्ण मानवजाति की सेवा

इस्लाम अपने अनुयायियों को उम्मत (समुदाय) का शुभचिन्तक बनाने के साथ संपूर्ण मानवजाति का भी हमदर्द बनाता है। पक्षपात आदमी को नफ़रत और दुश्मनी सिखाता है। जो व्यक्ति क़ौमी पक्षपात में ग्रस्त हो वह अपनी क़ौम के अतिरिक्त किसी अन्य क़ौम के साथ हमदर्दी एवं प्रेम का पक्षधर नहीं हो सकता। इस्लाम पूर्णतः इसके विरुद्ध है। इस्लाम की दृष्टि में अल्लाह की सृष्टि (मख़लूक़) अल्लाह का कुटुम्ब है, जो उसकी जितनी सेवा करे वह अल्लाह का उतना ही प्रिय है :

- हज़रत अनस (रज़ि०) और हज़रत अब्दुल्लाह बिन मसऊद (रज़ि०) रिवायत करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया : "सारी सृष्टि अल्लाह का कुटुम्ब है, उसमें से वह व्यक्ति अल्लाह को सबसे अधिक प्रिय है जो उसके कुटुम्ब को अधिक लाभ पहुँचाए।" —मिशकात

क़ुरआन मजीद ने मुहताजों, दुखियों, असमर्थों, अनाथों और साधनों से वंचित इनसानों की सेवा और उनके साथ अच्छे व्यवहार का आम हुक्म दिया है। कहीं भी

उसने यह आदेश नहीं दिया कि केवल मुसलमानों या इनसानों के किसी विशेष वर्ग और दल की सेवा की जाए और दूसरों की न की जाए। वह चाहता है कि समस्त मानव-जाति की सेवा हो, अपनों की भी और परायों की भी, एक मत और एक विचारधारा रखनेवाले अपने पक्ष के लोगों की भी और उन लोगों की भी जिनसे कोई धार्मिक, जातीय व क़ौमी मतभेद हो। वे भी इसके अधिकारी हैं जो हमारी भाषा बोलते हैं और वे भी जो अन्य भाषा बोलनेवाले हैं। मानवजाति का प्रत्येक व्यक्ति इस बात का अधिकार रखता है कि कठिनाइयों और मुसीबतों में उसे अकेले तड़पता न छोड़ दिया जाए, बल्कि उसके दर्द और पीड़ा को महसूस किया जाए और यथासंभव उसे दूर करने का प्रयास किया जाए। इस्लाम की निगाह में वर्ण, वंश, क़ौम और देश के अन्तर के बावजूद मानवजाति एक-दूसरे के अवयव हैं, क्योंकि प्राकृतिक रूप से उनका गुण एवं सार एक ही है।

हदीसों में यह वास्तविकता बहुत स्पष्ट रूप से उल्लिखित है। नीचे कुछ हदीसें प्रस्तुत की जा रही हैं :

- हज़रत जरीर बिन अब्दुल्लाह की रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया : "अल्लाह उस व्यक्ति पर दया नहीं करता जो इनसानों पर दया न करे।" —बुख़ारी, मुसलिम
- हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर (रज़ि०) अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से रिवायत करते हैं कि "दया करनेवालों पर दयावान (रहमान) दया करता है, अतः धरतीवालों पर दया करो, आकाशवाला तुमपर दया करेगा।" —तिरमिज़ी
- हज़रत अब्दुल्लाह बिन मसऊद (रज़ि०) बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया : "तुम कदापि ईमानवाले नहीं होगे जब तक कि तुम दया न करो।" हमने अर्ज़ किया : "ऐ अल्लाह के रसूल! हममें से हर व्यक्ति दया करता है।" आपने फ़रमाया : "इससे अभिप्राय वह दया और सहानुभूति नहीं है जो तुममें से कोई व्यक्ति अपने निकटतम व्यक्ति के साथ करता है। यहाँ तो उस आम दया और कृपा का उल्लेख है जो समस्त इनसानों के साथ होती है।" —तबरानी, फ़तहुल बारी : 10/337
- हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया : "दया और हमदर्दी तो केवल उसी व्यक्ति के सीने से निकाल दी जाती है जो दुष्ट प्रवृत्ति का हो।" —मुसनद अहमद : 2/301, तिरमिज़ी
- हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) बयान करते हैं कि कुछ लोग बैठे हुए थे कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने उनके पास पहुँचकर फ़रमाया : "क्या मैं तुम्हें बताऊँ कि तुममें भला कौन है और बुरा कौन?" आपके इस प्रश्न पर सब

लोग चुप रहे, परन्तु जब आपने तीन बार यही प्रश्न दुहराया तो एक व्यक्ति ने कहा : "ऐ अल्लाह के रसूल ! अवश्य बताएँ कि हममें भला कौन है और बुरा कौन ?" तब आपने फ़रमाया : "तुममें भला और श्रेष्ठ वह व्यक्ति है जिससे भलाई की आशा की जाए और जिसकी बुराई से लोग सुरक्षित हों, और तुममें सबसे बुरा वह व्यक्ति है जिससे भलाई की आशा न की जाए और जिसकी बुराई से लोग सुरक्षित न हों ।"

—मुसनद अहमद, तिरमिज़ी 2/368

इन हदीसों में किसी भेदभाव के बिना सारे इनसानों और ईश्वर की संपूर्ण सृष्टि के साथ अच्छा व्यवहार करने की शिक्षा दी गई है। यह इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि जो व्यक्ति भी हमारी सहायता और सहानुभूति का मुहताज है उसकी सहायता की जानी चाहिए। इस मामले में इनसानों को गिरोहों, वर्गों और दलों में विभाजित करना या अपने और पराए, परिचित और अपरिचित, सहधर्मी और अन्य धर्मावलम्बियों के बीच अन्तर करना और किसी को सेवा और अच्छे व्यवहार का पात्र समझना और किसी को इसका पात्र न मानना इस्लाम के स्वभाव और उसकी शिक्षा के सर्वथा विरुद्ध है। इस्लामी शिक्षाओं में इसकी कोई गुंजाइश नहीं है।

इन हदीसों का एक पहलू यह भी है कि ये जनसेवा के महत्त्व को बताती है। जो काम दिन और रात की इबादत के बराबर हो जिससे इनसान अल्लाह का प्रिय बन जाए, जो उसे अल्लाह से निकट कर दे, जिसके कारण अल्लाह की रहमत उतरे, जो क्रूरता और निर्दयता जैसी नैतिक बुराइयों को दूर करने का साधन हो, जो उसे नेक, सदाचारी और समाज का श्रेष्ठतम व्यक्ति बना दे, उसकी श्रेष्ठता और महत्त्व से एक मुसलमान कैसे इनकार कर सकता है? इसके लिए इसमें इतनी बड़ी प्रेरणा है कि इसके पश्चात् वह किसी अन्य प्रेरणा का मुहताज नहीं रहता।

सेवा और अच्छे व्यवहार के अधिकारी ये हैं

इस्लाम की यह शिक्षा पिछले पृष्ठों में विस्तारपूर्वक आ चुकी है कि समाज में जो भी व्यक्ति सेवा का हक़दार हो उसकी सेवा होनी चाहिए, इससे आगे इस्लाम ने यह भी बताया है कि सेवा और अच्छे व्यवहार के अधिकारी कौन हैं। इनसान को माँ-बाप, बाल-बच्चों और निकटतम सम्बन्धियों से स्वाभाविक रूप से प्रेम होता है। वह उनसे एक विशेष हार्दिक सम्बन्ध महसूस करता है, इसी कारण उनकी सेवा को अपना नैतिक कर्त्तव्य समझता है, परन्तु समाज के अन्य लोगों के साथ इस प्रकार का भावनात्मक लगाव उसके अन्दर नहीं होता, अतः उनके साथ उसका व्यवहार भी भिन्न होता है। इस्लाम इनसानों के बीच सम्बन्धों के प्रकार, उनके पदों और श्रेणियों को पूरी तरह ध्यान में रखता और उनके अधिकारों का निर्धारण करता है। इसके साथ उसकी शिक्षा यह है कि इनसान मात्र उन्हीं व्यक्तियों की सेवा करने को अपना कर्त्तव्य न समझे जिनसे उसका ख़ून का सम्बन्ध है, बल्कि वह उन लोगों के साथ भी अच्छा व्यवहार करे जिनसे उसका कोई रिश्ता-नाता नहीं है। उसकी सेवा और सद्व्यवहार का क्षेत्र उसके घर और परिवार से आगे बढ़कर समूचे समाज तक फैल जाए। वह सम्पूर्ण मानवजाति को अपना परिवार समझकर उसकी सेवा के लिए खड़ा हो जाए। क़ुरआन की सूरा 'निसा' की एक आयत अति संक्षिप्त रूप में बताती है कि वे कौन लोग हैं जो सेवा और अच्छे व्यवहार के अधिकारी हैं और जिनसे ग़फ़लत और लापरवाही नहीं बरती जा सकती। वह आयत यह है :

- "और अल्लाह ही की बन्दगी करो और उसके साथ किसी को साझी न ठहराओ। और अच्छा व्यवहार करो माँ-बाप के साथ और नातेदारों, अनाथों, मुहताजों, नातेदार पड़ोसियों के साथ और उन पड़ोसियों के साथ जो अजनबी हों, और पास के व्यक्ति के साथ और साथ के मुसाफ़िरों के साथ और उन (लौंडी-ग़ुलामों) के साथ जो तुम्हारे अधिकार में हों। निस्संदेह अल्लाह किसी ऐसे व्यक्ति को पसन्द नहीं करता जो इतरानेवाला और डींग मारनेवाला हो।" —क़ुरआन, 4 : 36

इस आयत में हालाँकि समाज के उन समस्त कमज़ोर और महरूम वर्गों का उल्लेख नहीं है जिनकी सेवा करने की क़ुरआन ताकीद करता है, परन्तु इससे उसके सहानुभूतिपूर्ण तथा प्रेम से भरे हुए व्यवहार को समझने में सहायता अवश्य मिलती है। यहाँ हम इस आयत की संक्षिप्त व्याख्या करेंगे, लेकिन इससे पहले यह बात स्पष्ट कर

देना उचित होगा कि कुरआन ने 'सेवा' के लिए 'एहसान' का पारिभाषिक शब्द प्रयोग किया है। यह बड़ा व्यापक शब्द है जो सेवा के सभी पहलुओं पर हावी है। इसमें ढाढ़स, सहानुभूति, प्रेम, आवश्यकताओं का पूरा करना तथा किसी को उसके अधिकार से अधिक देना आदि सब कुछ आ जाता है।

माँ-बाप के साथ अच्छा व्यवहार

कुरआन में एक अल्लाह की इबादत का आदेश देने के पश्चात इनसानों के साथ अच्छे व्यवहार की हिदायत की गई है। इस विषय में सबसे पहले माँ-बाप का उल्लेख किया गया है—

- "माँ-बाप के साथ अच्छा व्यवहार करो।" —कुरआन, 4 : 36

माँ-बाप की सेवा की शिक्षा दुनिया के प्रत्येक धर्म ने दी है। कुरआन मजीद में एक-दो नहीं, बल्कि अनेक स्थानों पर अल्लाह की इबादत के पश्चात माँ-बाप के साथ अच्छे व्यवहार का आदेश दिया गया है। इसमें यह संकेत है कि इनसान पर सबसे अधिक उपकार अल्लाह तआला के हैं। उसके बाद माँ-बाप के उपकार हैं। इनसान का अस्तित्व, उसका जन्म, पालन-पोषण, देख-भाल, शिक्षा-दीक्षा तथा उसके आर्थिक एवं नैतिक विकास आदि में माँ-बाप अधिक भागीदार होते हैं। यदि वे ध्यान न दें तो वह उन्नति नहीं कर सकता, बल्कि उसका अस्तित्व ही खतरे में पड़ सकता है। अशिक्षित से अशिक्षित तथा दरिद्र माँ-बाप भी संतान के लिए जो कुरबानी देते हैं, इनसानी समाज में इसका कोई दूसरा उदाहरण नहीं दिया जा सकता। उनके उपकारों में अल्लाह तआला के उपकारों की झलक दिखाई पड़ती है। अल्लाह की इबादत वास्तव में उसके उपकारों के प्रति कृतज्ञता-प्रकाशन है। माँ-बाप का स्थान चूँकि अल्लाह के बराबर नहीं है। अतः उनकी उपासना तो नहीं की जा सकती, परन्तु उनके साथ अच्छा व्यवहार करना अनिवार्य है। यही उनके उपकारों के प्रति कृतज्ञता-प्रकाशन है। कुरआन ने अल्लाह तआला के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने का भी आदेश दिया है और माँ-बाप के प्रति कृतज्ञता दिखाने की भी हिदायत की है—

- "मेरे प्रति कृतज्ञ हो और अपने माँ-बाप के प्रति भी। मेरी ही ओर पलटकर आना है।" —कुरआन, 31 : 14

वर्तमान सभ्यता ने पारिवारिक व्यवस्था को छिन्न-भिन्न करके रख दिया है। इसके साथ वे उच्चतम नैतिक मूल्य भी समाप्त होते जा रहे हैं जो इस व्यवस्था से सम्बद्ध थे, इसका बड़ा बुरा प्रभाव वृद्ध माँ-बाप पर पड़ा है। आज यत्नपूर्वक इस बात पर विचार किया जा रहा है कि साठ-सत्तर वर्ष के इन बूढ़ों का क्या किया जाए जो हमारे लिए बेकार हो चुके हैं। जब वे भविष्य के निर्माण में सहयोगी नहीं हैं तो उनका भार कब

तक सहन किया जाए? हालाँकि जिन बूढ़ों के विषय में इस प्रकार सोचा जाता है उन्होंने वर्तमान पीढ़ी को तथा अपनी संतान को उस समय नदी में नहीं फेंक दिया जबकि वह उनके हाथों में विवश और लाचार थी और उनकी दया एवं कृपा के सहारे जी रही थी, बल्कि उन्होंने उसे अपने जिगर का ख़ून पिलाकर पाला-पोसा और जीवन के क्षेत्र में दौड़-धूप के योग्य बनाया। क़ुरआन ने विशेष रूप से बुढ़ापे में माँ-बाप के साथ अच्छा व्यवहार करने की ताकीद की है :

- "यदि उनमें से कोई एक या दोनों तुम्हारे सामने बुढ़ापे को पहुँच जाएँ तो तुम उन्हें 'उफ़' तक न कहो और न उन्हें झिड़को, बल्कि उनसे भली प्रकार बात करो और दयालुता और नर्मी के साथ उनके सामने झुककर रहो; और दुआ करो : ऐ रब! जिस तरह इन्होंने बचपन में दया और प्रेम से मेरा पालन-पोषण किया है, तू भी इनपर दया कर।" —क़ुरआन, 17 : 23-24

नातेदारों के साथ अच्छा व्यवहार

क़ुरआन में कहा गया है :

- "और नातेदारों के साथ अच्छा व्यवहार करो।"

क़ुरआन ने माँ-बाप के तुरन्त बाद नातेदारों का ज़िक्र यहाँ भी किया है और अन्य स्थानों पर भी। इसमें इस बात की ओर संकेत है कि माँ-बाप के बाद सबसे अधिक हक़ नातेदारों का है। माँ-बाप ही से नातेदारों की नातेदारी पैदा होती है। अतः आधार तो वही हैं, फिर जो व्यक्ति उनसे जितना क़रीबी सम्बन्ध रखता है उसका हक़ भी उतना ही बढ़ जाता है। नातेदारों के साथ अच्छा व्यवहार 'सिला रहमी' (ख़ून के रिश्तों को जोड़े रखना और प्रेम करना) है। क़ुरआन ने इसकी बड़ी ताकीद की है। एक स्थान पर अल्लाह के प्रियजनों की विशेषताएँ इस प्रकार बयान की गई हैं :

- "(और उनकी नीति यह होती है कि) अल्लाह ने जिन-जिन नातों को जोड़े रखने का आदेश दिया है उन्हें जोड़े रखते हैं, अपने रब से डरते हैं और इस बात से डरते हैं कि कहीं उनसे सख़्त हिसाब न लिया जाए।"

—क़ुरआन, 13 : 21

नातेदारों से अच्छा व्यवहार से पूरा सामाजिक जीवन आनन्दमय बन जाता है। जहाँ यह ख़ूबी न हो वहाँ सामाजिकता में बिगाड़ आ जाता है। इसी कारण नातेदारों से अच्छे व्यवहार का बड़ा महत्त्व बताया गया है।

हज़रत सुलैमान बिन आमिर (रज़ि०) अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से रिवायत करते हैं कि आपने फ़रमाया :

- "किसी ऐसे मुहताज को (जिससे नाता न हो) सदक़ा (दान) देना केवल एक

सदक़ा है, लेकिन वही सदक़ा किसी सम्बन्धी को दिया जाए तो यह सदक़ा भी है और सिला रहमी (नातेदारों से अच्छा व्यवहार) भी।"

—तिरमिज़ी, नसई

अभिप्राय यह कि नातेदारों पर ख़र्च करना दुगुने सवाब (पुण्य) का कारण है। एक पहलू से यह एक सामान्य सदक़ा है जिस प्रकार अन्य सदक़े हैं। दूसरे पहलू से यह नातेदारों के साथ अच्छा व्यवहार भी है और सिला रहमी भी।

यह एक वास्तविकता है कि इनसान अपने नातेदारों से स्वाभाविक रूप से निकटता महसूस करता है। इसी के साथ यह भी एक हक़ीक़त है कि कुछ रिश्तों में बड़ी कोमलता पाई जाती है। साधारण-सी घटनाओं से वैमनस्य पैदा हो जाता है और सम्बन्ध बिगड़ने लगते हैं। हदीस में कहा गया है कि इन सम्बन्धों को बिगड़ने न दिया जाए और उन्हें क़ायम रखने का हर संभव प्रयत्न किया जाए। अच्छा व्यवहार इसका एक बेहतर तरीक़ा है :

हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर (रज़ि०) की रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया :

- "नाता जोड़नेवाला (सिला रहमी करनेवाला) वह नहीं है जो नातेदारों से उस समय नाता जोड़े जबकि वे भी उसके साथ अच्छा व्यवहार करें, बल्कि वास्तव में नाता जोड़नेवाला तो वह है जो उस समय नातों को जोड़े जबकि वे टूट जाएँ।" —बुख़ारी, अबू दाऊद
- हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) की रिवायत है कि एक व्यक्ति ने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से कहा कि "मेरे कुछ नातेदार हैं। मैं तो उनसे नाता जोड़ता हूँ, परन्तु वे मुझसे नाता तोड़ते हैं। मैं उनसे अच्छा व्यवहार करता हूँ और वे मेरे साथ बुरा व्यवहार करते हैं, मैं उन्हें माफ़ करता हूँ परन्तु वे मेरे साथ घटिया व्यवहार करते हैं।" आपने यह सुनकर फ़रमाया : "यदि तुम्हारा व्यवहार ऐसा ही है जैसाकि तुमने बयान किया है तो मानो तुम उनके मुँह में गर्म राख भर रहे हो और जब तक तुम्हारा यह व्यवहार बना रहेगा अल्लाह की ओर से एक मददगार तुम्हारे साथ रहेगा।" —मुसलिम

अनाथों (यतीमों) के साथ अच्छा व्यवहार

माँ-बाप और नातेदारों का हक़ सबसे ऊपर है। उनके साथ अच्छे व्यवहार का आदेश देने के बाद समाज के अन्य मुहताजों, ज़रूरतमन्दों और कमज़ोरों के साथ सद्व्यवहार का आदेश दिया गया है। इस विषय में सबसे पहले अनाथों और मुहताजों का ज़िक्र किया गया है जो समाज के सबसे कमज़ोर वर्ग होते हैं। फ़रमाया :

• "और अनाथों और मुहताजों के साथ अच्छा व्यवहार करो।"
—क़ुरआन, 2 : 177

जिस मासूम बच्चे के सिर से उसके बाप की छाया उठ जाए, वह उस ख़ुलूस, प्रेम और ध्यान से वंचित हो जाता है जो उसके पालन-पोषण, शिक्षा-दीक्षा तथा प्रायः आर्थिक विकास और स्थिरता के लिए बुनियादी महत्त्व रखता है। इसलिए यह समाज की ज़िम्मेदारी है कि उसकी आवश्यकताएँ पूरी करे और उसे बाप से वंचित होने का एहसास न होने दे। समाज द्वारा उपेक्षा और बेपरवाई से इतना ही नहीं कि उसका पालन-पोषण ठीक ढंग से नहीं होगा और वह शारीरिक रूप से दुर्बल होगा, बल्कि उसका उचित मानसिक एवं वैचारिक प्रशिक्षण भी नहीं हो सकेगा। आश्चर्य नहीं कि ऐसे क्रूर एवं निर्दयी समाज के विरुद्ध उसके अन्दर विद्रोह की भावना पनपने लगे और वह एक अच्छा नागरिक बनने के स्थान पर पूरे समाज के लिए हानिकारक सिद्ध हो।

क़ुरआन और हदीस में अनाथों के पालन-पोषण, देखभाल, शिक्षा-दीक्षा, उनकी संपत्ति की रक्षा और उनके अधिकारों की पूर्ति पर बार-बार ज़ोर दिया गया है।

हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया :

• "अनाथ का भरण-पोषण करनेवाला, चाहे वह उसका हो या किसी दूसरे का (नातेदार हो अथवा अपरिचित) वह और मैं जन्नत में इस प्रकार क़रीब होंगे जैसे मेरी ये दो उँगलियाँ।"
—मुसलिम

हदीस के उल्लेखकर्ता इमाम मालिक ने तर्जनी (शहादत) और बीच की उँगली को आपस में मिलाकर दिखाया।
—मुसलिम

अनाथ अपनी कमज़ोरी और नासमझी के कारण अपने वैध अधिकारों की भी रक्षा नहीं कर पाता। उसके अधिकारों को छीनना हर एक के लिए आसान होता है। क़ुरआन ने ऐसे लोगों को कठोर दण्ड की धमकी दी है :

• "निश्चय ही वे लोग जो यतीमों के माल ज़ुल्म से खाते हैं, वे तो अपने पेट आग से भरते हैं, और वे अवश्य जहन्नम की भड़कती हुई आग में डाले जाएँगे।"
—क़ुरआन, 4 : 10

इस्लाम पूरे समाज पर यह ज़िम्मेदारी डालता है कि वह यतीमों के न केवल पालन-पोषण की व्यवस्था करे, बल्कि उन्हें दयावान, संयमी, सुशील और शरीफ़ इनसान बनाने में सहायता करे ताकि वे समाज पर बोझ और मुसीबत बनने के बजाए उसके लिए संपत्ति और साधन बन सकें।

मुहताजों के साथ अच्छा व्यवहार

अनाथों के साथ मुहताजों का भी उल्लेख किया गया है। मुहताज से अभिप्राय समाज के उन लोगों से है जो शारीरिक असमर्थता और आर्थिक परेशानियों के कारण अपनी बुनियादी आवश्यकता पूरी करने में असमर्थ हैं। शारीरिक असमर्थता भी आर्थिक दौड़-धूप में बाधक बनती है और धन का अभाव भी। इस्लाम चाहता है कि इस बाधा को दूर किया जाए और जो लोग आर्थिक परेशानियों में घिरे हुए हों उनकी हर संभव सहायता की जाए, ताकि उनकी आवश्यकताएँ पूरी हों और उन्हें आर्थिक स्थिरता प्राप्त हो। क़ुरआन और हदीस में दरिद्रों और मुहताजों के साथ अच्छे व्यवहार और उनके नैतिक तथा क़ानूनी अधिकारों का बार-बार उल्लेख किया गया है। एक स्थान पर आदेश है :

- "तो नातेदार को उसका हक़ दो, और मुहताज और (ज़रूरतमन्द) मुसाफ़िर को (उसका हक़), यह उत्तम है उनके लिए जो अल्लाह की ख़ुशी चाहते हैं, और वही कामयाब होनेवाले हैं।"
  —क़ुरआन, 30 : 38

मुहताज प्रायः भीख माँगनेवाले को कहा जाता है। भीख माँगना लाचारी और दरिद्रता का लक्षण नहीं है। जिन लोगों की यह बुरी आदत बन जाती है वे बिना किसी लाचारी के भी भीख माँगते हैं। उन्हें मुहताज नहीं, मुहताजों जैसे रूपवाला कहना चाहिए। इसके विपरीत कुछ लोग अधिक ज़रूरतमन्द होते हैं, लेकिन उनका स्वाभिमान और आत्मसम्मान उन्हें इस बात की अनुमति नहीं देता कि वे किसी के सामने हाथ फैलाएँ। क़ुरआन की शिक्षा यह है कि इस प्रकार के वास्तविक ज़रूरतमन्दों को देखा जाए। विशेष रूप से उन लोगों को जो दीन (धर्म) की सेवा में लग जाने के कारण आर्थिक दौड़-धूप नहीं कर सकते। उनके विषय में क़ुरआन में है :

- "उनके स्वाभिमान के कारण बेख़बर उन्हें धनवान समझता है। तुम उनके चेहरों से उनको पहचान सकते हो। वे लोगों से चिमट-चिमटकर नहीं माँगते।"
  —क़ुरआन, 2 : 273

इस आयत की व्याख्या हज़रत अबू हुरैरा की एक रिवायत से होती है। वे कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया :

- "मुहताज वह नहीं है जो लोगों के सामने हाथ फैलाए माँगता फिरे, जिसे तुम दो-एक निवाले (या खाने की कोई चीज़) या एक-दो छुहारे दे देते हो, बल्कि मुहताज तो वह है जो बुनियादी आवश्यकताओं की सामग्री न होने के बावजूद इस प्रकार रहता है कि उसकी हालत का पता नहीं चलता कि उसे सदक़ा या दान दिया जाए, और न ही वह खड़ा होकर किसी से माँगता है।"
  —बुख़ारी, मुसलिम

इस प्रकार समाज के उन शरीफ़ और सम्मानित व्यक्तियों की सहायता की ओर ध्यान दिलाया गया है जिनकी आर्थिक परेशानियों की जानकारी बड़ी मुश्किल से ही होती है और जो सबसे अधिक सहायता के अधिकारी होते हैं।

पड़ोसियों के साथ अच्छा व्यवहार

क़ुरआन की सूरा निसा की आयत 36 में पड़ोसियों की सेवा और उनके साथ अच्छा व्यवहार करने की हिदायत इस प्रकार दी गई है :

- "नातेदार पड़ोसियों, अजनबी पड़ोसियों और पास बैठनेवालों के साथ अच्छा व्यवहार करो।" —क़ुरआन, 4 : 36

इनसान जिन लोगों के बीच रहता है और जो उसके पड़ोसी हैं और जिनसे वह अपने सामाजिक और आर्थिक जीवन में अलग-थलग नहीं रह सकता उनके अधिकार, स्पष्ट है कि, उन लोगों से अधिक हैं जिनसे उसका इस प्रकार का सम्बन्ध नहीं होता। यहाँ पड़ोसियों के तीन प्रकार बताए गए हैं। एक वह जो पड़ोसी होने के साथ नातेदार भी है, दूसरा वह जो केवल पड़ोसी है और तीसरा वह जिसका संयोग से या कभी-कभी साथ हो जाता है जैसे यात्रा में, कार्यालय में, स्कूल और कालेज में, कारख़ाना और फ़ैक्ट्री में, व्यापार और कारोबार में। जिन लोगों के साथ इस प्रकार का साथ हो वे भी एक प्रकार के 'पड़ोसी' हैं। पड़ोसियों के साथ अच्छे व्यवहार का महत्त्व संसार के समस्त धर्मों ने बताया है। परन्तु इस्लाम ने पड़ोसियों के साथ सद्व्यवहार ही की शिक्षा नहीं दी, बल्कि पड़ोसी होने का इतना व्यापक विचार दिया कि संसार में इसका कोई उदाहरण नहीं मिलता। उसने कहा है कि इनसान के साथ किसी भी प्रकार का थोड़ी-बहुत देर के लिए भी साथ हो जाए तो उसका हक़ क़ायम हो जाता है। यदि यह संपर्क स्थाई हो तो उसका हक़ भी बहुत अधिक बढ़ जाता है।

हज़रत आइशा (रज़ि०) और हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर (रज़ि०) दोनों से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया :

- "जिबरील (अलै०) मुझे पड़ोसी के साथ अच्छे व्यवहार की इतनी ताकीद करते थे कि मैं सोचने लगा कि वे उत्तराधिकार (विरासत) में उसे भागीदार बना देंगे।" —बुख़ारी, मुसलिम

इस्लाम केवल इतना ही नहीं चाहता कि पड़ोसी को किसी प्रकार का कष्ट न पहुँचे, बल्कि वह यह भी चाहता है कि उसकी आर्थिक, नैतिक, हर प्रकार की सहायता की जाए और उसके साथ अत्यंत शालीनता का व्यवहार अपनाया जाए ताकि समाज का हर व्यक्ति इस विश्वास और इतमीनान के साथ जीवन बिताए कि वह शुभचिन्तक लोगों के बीच रह रहा है, जिनसे उसे कभी कोई कष्ट नहीं पहुँचेगा, वे किसी भी आड़े

समय में उसकी सहायता के लिए दौड़ पड़ेंगे और उसके दुख-दर्द में भाइयों की भाँति काम आएँगे। इस मामले में इस्लाम की शिक्षाओं की महत्ता का अनुमान निम्नलिखित दो हदीसों से हो सकता है :

अबू सईद ख़ुज़ाई (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने तीन बार फ़रमाया :

- "ख़ुदा की क़सम ! वह व्यक्ति मोमिन् नहीं। ख़ुदा की क़सम ! वह व्यक्ति मोमिन नहीं। ख़ुदा की क़सम ! वह व्यक्ति मोमिन नहीं।" पूछा गया : 'कौन ?' आप (सल्ल०) ने फ़रमाया : "वह व्यक्ति जिसके कष्टदायक कामों से उसका पड़ोसी सुरक्षित न हो।" —बुख़ारी, मुसलिम

इस हदीस में पड़ोसी को कष्ट पहुँचाने और दुख देने को ईमान के विरुद्ध ठहराया गया है। एक अन्य हदीस में हज़रत अब्दुल्लाह बिन अब्बास (रज़ि०) कहते हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को फ़रमाते सुना :

- "वह व्यक्ति मोमिन नहीं है जो स्वयं तो पेट भरकर खाए और उसका पड़ोसी उसके निकट ही भूखा पड़ा रहे।" —मिशकात, बैहक़ी

इससे पता चलता है कि ईमान की पहचान ही यह है कि आदमी का पड़ोसी उसकी वजह से शान्ति का अनुभव करे और वह उसके दुख-दर्द और कठिनाइयों में काम आए।

यात्रियों के साथ अच्छा व्यवहार

इसके बाद इब्नुस्सबील यानी यात्रियों (मुसाफ़िरों) का ज़िक्र है। अपरिचितों और यात्रियों की सेवा को सदा ही पुण्य और सवाब का काम समझा गया है, उनके लिए सराएँ बनाई गईं और उनके खाने-पीने और आराम व राहत का प्रबन्ध किया गया। अब सेवा की भावना समाप्त हो गई है और इन चीज़ों का स्थान बड़े-बड़े भव्य होटलों ने ले लिया है। इन होटलों से न तो हर व्यक्ति के लिए फ़ायदा उठाना आसान है और न ही यात्रियों के सारे मसले हल होते हैं। जो व्यक्ति वतन से दूर और यात्रा की स्थिति में हो उसे अनेक कठिनाइयाँ पेश आ सकती हैं। रुपये-पैसे का न होना, स्वास्थ्य का बिगड़ जाना, निवास एवं भोजन की उचित सुविधा का न होना, कारोबार तथा अन्य आवश्यकताओं के लिए भाग-दौड़ में कष्टों का सामना करना आदि एक सामान्य-सी बात है। यदि यात्रा विदेश की हो तो व्यक्ति अन्तर्राष्ट्रीय नियमों के तहत कुछ अन्य प्रकार की परेशानियों में घिर सकता है। इस पहलू से देखा जाए तो आज के युग में यात्री की समस्याएँ पहले से अधिक विस्तृत और जटिल हो गई हैं। इस्लाम पूरे समाज की यह ज़िम्मेदारी ठहराता है कि वह ऐसे तमाम अवसरों पर यात्री के साथ अच्छे से

अच्छा व्यवहार करे, ताकि वह अपने को अपरिचित महसूस न करे और जिस उद्देश्य के लिए उसने घरबार और वतन छोड़ा था वह यात्रा के कष्टों के कारण पूरा होने से न रह जाए।

ग़ुलामों और आश्रितों के साथ अच्छा व्यवहार

जो लोग सेवा और अच्छे व्यवहार के अधिकारी हैं उनमें ग़ुलामों और अधीन लोगों को विशेष रूप से शामिल किया गया है। अल्लाह का फ़रमान (आदेश) है:

- "और उन ग़ुलामों के साथ अच्छा व्यवहार हो।" —क़ुरआन, 4 : 36

क़ुरआन अवतरित होने के शताब्दियों पहले से ग़ुलामी की प्रथा थी। ग़ुलामों के साथ पशुओं से भी बुरा व्यवहार किया जाता था और उनके कोई अधिकार नहीं थे। क़ुरआन ग़ुलामी को समाप्त करना चाहता है, इस विषय में उसने जो प्रयास किए हैं यहाँ उनपर वार्ता करने का अवसर नहीं है, केवल इतना कहना है कि उसने इस बारे में प्रथम प्रयास यह किया कि ग़ुलामों, आश्रितों और अधीनों के अधिकार निश्चित किए हैं और उनके साथ अच्छे व्यवहार की ताकीद की है। इस विषय से सम्बन्धित बहुत-सी हदीसों में से यहाँ केवल एक हदीस प्रस्तुत की जा रही है।

हज़रत अबू ज़र (रज़ि०) की रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया :

- "ये ग़ुलाम तुम्हारे भाई हैं, जो ख़ुद खाओ वही इनको खिलाओ और जो ख़ुद पहनो वही इनको पहनाओ। इनकी शक्ति व सामर्थ्य से अधिक इनसे काम न लो। यदि इनपर शक्ति से अधिक बोझ डालो तो उसके उठाने में इनकी सहायता करो।" —बुख़ारी, मुसलिम

ग़ुलामों और आश्रितों के प्रति अच्छे व्यवहार का आदेश देने के बाद अन्त में आदेश दिया :

- "निस्संदेह अल्लाह किसी ऐसे व्यक्ति को पसन्द नहीं करता जो घमंडी है और डींगें मारता है।" —क़ुरआन, 4 : 36

इस आयत में 'मुख़ताल' और 'फ़ख़ूर' दो शब्द आए हैं। यद्यपि ये दोनों शब्द समानार्थी हैं, परन्तु फिर भी इनमें थोड़ा-सा अन्तर है। 'मुख़ताल' वह व्यक्ति है जिसके कामों से घमंड का प्रदर्शन हो। 'फ़ख़ूर' उस व्यक्ति को कहा जाता है जो शेख़ी बघारता और अपनी बड़ाई बयान करता फिरे और डींग मारे। तात्पर्य यह कि अल्लाह तआला उस व्यक्ति को बहुत नापसन्द करता है जिसकी कथनी और करनी से घमंड और अभिमान प्रकट होता हो। घमंड इनसान को अल्लाह की इबादत और बन्दों की सेवा, दोनों ही से रोकता है। जबकि इन दोनों विशेषताओं के कारण ही इनसान की इनसानियत बाक़ी रहती है, वरना वह पशु से भी नीचा हो जाता है।

नैतिक शिक्षा के साथ क़ानूनी सुरक्षा भी

एक बात नोट करने की यह है कि यहाँ माँ-बाप, नातेदारों, दरिद्रों, मुहताजों और समाज के अन्य कमज़ोर व्यक्तियों तथा वर्गों के साथ अच्छे से अच्छा और उत्तम से उत्तम व्यवहार करने की शिक्षा दी गई है। यह शिक्षा मक्का से मदीना तक क़ुरआन उतरने की पूरी अवधि में निरन्तर जारी रही। इस प्रकार समाज में एक-दूसरे के साथ सहानुभूति और प्रेम की भावना निरन्तर पैदा की गई और कमज़ोरों, उपेक्षितों और हक़दारों के अधिकार पहचानने और उनके साथ अच्छा व्यवहार करने की लगातार प्रेरणा दी जाती रही, फिर एक विशेष चरण में इस्लाम ने इन सबके अधिकार निर्धारित किए और क़ानूनी सुरक्षा प्रदान की, ताकि कोई व्यक्ति किसी कमज़ोर पर अत्याचार न कर सके और कोई हक़दार अपने अधिकार पाने से वंचित न रहे।

जनसेवा के विभिन्न काम

संसार में ऐसे लोगों की कमी नहीं है जो समाज के कमज़ोरों, उपेक्षितों और मुहताजों के साथ मौखिक सहानुभूति के लिए हर समय तैयार रहते हैं, परन्तु उनके साथ व्यावहारिक रूप से सहानुभूति दर्शानेवाले लोग बहुत कम होते हैं। समाज के जो लोग आर्थिक कठिनाइयों में घिरे हुए हों उन्हें मौखिक सहानुभूति से अधिक व्यावहारिक सहानुभूति की आवश्यकता होती है। करुणा, प्रेम तथा मीठी बातों से चाहे उन्हें सामयिक रूप से कुछ हार्दिक शान्ति मिल जाए, परन्तु उनकी कठिनाइयाँ दूर नहीं हो सकतीं।

धन के द्वारा सेवा

इस्लाम ने अपने अनुयायियों को बार-बार आदेश दिया है कि वे इनसानों की सेवा और उनकी भलाई में जी-जान से अपना धन ख़र्च करें और उसे व्यर्थ बरबाद एवं निष्फल न समझें। क्योंकि इनसान का जो धन दूसरों के काम आए वह उसके लिए बहुत बड़ी पूँजी है। उससे क़ियामत के दिन वह अल्लाह तआला की असीम अनुकम्पा और प्रतिदान का अधिकारी होगा। क़ुरआन मजीद सामान्यतः 'नमाज़' के साथ 'ज़कात' और 'इनफ़ाक़' (ख़र्च करने) का ज़िक्र करता है, ताकि उसका महत्त्व दिल में बैठ जाए और अल्लाह को याद करनेवाला कोई व्यक्ति उससे ग़ाफ़िल न होने पाए। अल्लाह का आदेश है :

- "और नमाज़ क़ायम रखो, और ज़कात देते रहो, और तुम अपने लिए जो भलाई (कमाकर) आगे भेजोगे, उसे अल्लाह के पास पाओगे। जो कुछ भी तुम करते हो अल्लाह उसे देख रहा है।" —क़ुरआन, 2 : 110

क़ुरआन मानव-सेवा में धन ख़र्च किए जाने को 'अल्लाह का क़र्ज़ देना' कहकर इस सेवा-कर्म को असाधारण महत्व व महानता प्रदान करता है।

- "... और नमाज़ क़ायम करो और ज़कात देते रहो, और अल्लाह को अच्छा क़र्ज़ दो। और जो भी नेकी तुम अपने लिए आगे भेजोगे, उसे अल्लाह के यहाँ पहुँचकर उससे अच्छा और बदले की दृष्टि से बहुत बढ़कर पाओगे। अल्लाह से क्षमा की प्रार्थना करते रहो, निस्सन्देह अल्लाह अत्यन्त क्षमाशील और दयावान है।" —क़ुरआन, 73 : 20

ईमानवालों के धन में वंचितों (महरूमों) का हक़ है

क़ुरआन मजीद ने ईमानवालों का जो चित्र खींचा है उसमें उनकी यह विशेषता स्पष्ट दिखाई देती है कि उनका धन उनके और उनके सम्बन्धियों ही के लिए नहीं होता, बल्कि उसमें वे समाज के दरिद्रों, कमज़ोरों और महरूमों का हक़ स्वीकार करते हैं।

क़ुरआन ने अल्लाह से डरनेवालों की एक ख़ूबी यह बयान की है :

- "और उनके मालों में माँगनेवालों का और उनका हक़ है जो पाने से रह गए हों।"

—क़ुरआन, 51 : 19

एक अन्य स्थान पर है :

- "उनके मालों में एक जाना-बूझा हक़ है, माँगनेवाले का और जो पाने से रह गया हो उसका।"

—क़ुरआन, 70 : 24-25

इनसानों के माल में दूर एवं निकट के जिन लोगों का हक़ है और जिनपर उनका माल ख़र्च होना चाहिए उसका विवरण क़ुरआन में इस प्रकार दिया गया है :

- "वे तुमसे पूछते हैं कि क्या ख़र्च करें (और कहाँ ख़र्च करें) ? कह दो कि जो माल भी तुम ख़र्च करो उसके हक़दार माँ-बाप, निकट सम्बन्धी, अनाथ, मुहताज और मुसाफ़िर हैं। और जो भलाई भी तुम करो अल्लाह उसे भली-भाँति जान लेगा।"

—क़ुरआन, 2 : 215

इस प्रकार इस्लाम ने हक़दारों और मुहताजों पर न केवल माल ख़र्च करने की ताकीद की है, बल्कि उसके अज्र और प्रतिदान को बताकर उसकी प्रेरणा भी दी है।

सद्व्यवहार

इनसानों की सेवा और उनके साथ अच्छे व्यवहार की चर्चा आते ही लोगों का ध्यान आम परिस्थितियों में बस आर्थिक सहायता की ओर चला जाता है, परन्तु इस्लाम ने इस तथ्य की ओर बार-बार ध्यान आकर्षित किया है कि किसी की सेवा और सद्व्यवहार के अर्थ यही नहीं हैं कि उसकी आर्थिक सहायता की जाए और उसकी भौतिक आवश्यकताएँ पूरी कर दी जाएँ, बल्कि इसमें प्रेम, सहानुभूति, ढाढ़स और वह उच्च नैतिक व्यवहार भी सम्मिलित हैं जो एक शिष्ट इनसान दूसरे इनसान के साथ करता है और जिसे सद्व्यवहार के अन्तर्गत माना जाता है। इनसान इस दुनिया में केवल इतने ही का मुहताज नहीं है कि उसे पेट भरने के लिए दो समय की रोटी, शरीर ढँकने के लिए कपड़े और सिर छिपाने के लिए मकान मिल जाए और यदि वह बीमार पड़ जाए तो उसे अस्पताल पहुँचा दिया जाए, बल्कि वह यह भी चाहता है कि यदि वह दरिद्र और निर्धन है तो उसे नीच और तिरस्कृत न समझा जाए। उसके साथ समानता और बराबरी का बरताव किया जाए। वह बीमार है तो उसकी दवा-इलाज ही का प्रबन्ध न हो, बल्कि उसकी सेवा और देख-रेख भी की जाए। उसमें कोई गुण है तो उसको स्वीकार किया जाए, उससे कोई ग़लती हो जाए तो क्षमा और दरगुज़र से काम लिया जाए। उसकी सुख-दुःख में सम्मिलित हुआ जाए और ठोस भौतिक सहायता के साथ बातचीत, मेल-जोल और पारस्परिक सम्बन्धों में भी उत्तम नैतिक रवैया अपनाया जाए। क़ुरआन

और हदीसों की दृष्टि में इसके बिना सेवा और सद्व्यवहार का विचार पूरा नहीं होता। इसका एक अच्छा उदाहरण यह है कि माँ-बाप केवल इतने ही के मुहताज नहीं होते कि संतान उनके खाने-कपड़े का प्रबन्ध कर दे, बल्कि वे संतान से ऐसे प्रेम और सहानुभूति के भी इच्छुक होते हैं जो उनके बुढ़ापे के कष्टों और निराशाओं को दूर कर दे। उनको यह एहसास न होने दे कि वे समाज में अकेले और निरर्थक होकर रह गए हैं। उनके बुढ़ापे का ध्यान रखे। उनको अपना बड़ा माने और उनके साथ सम्मान और आदर से पेश आए। क़ुरआन ने संतान को माँ-बाप के आर्थिक भरण-पोषण ही का आदेश नहीं दिया, बल्कि उनके साथ सद्व्यवहार की भी ताकीद की, जिसमें आर्थिक भरण-पोषण उच्चतम रूप से और सर्वप्रथम सम्मिलित हो जाता है।[1] अब देखिए क़ुरआन की दृष्टि में माँ-बाप के साथ सद्व्यवहार का विचार कैसा है :

- "यदि उनमें से कोई एक या दोनों तुम्हारे सामने बुढ़ापे को पहुँच जाएँ तो उन्हें 'उफ़' तक न कहो और न उन्हें झिड़को, बल्कि उनसे भली बात करो। और दयालुता के साथ उनके लिए विनम्रता की भुजा झुका दो, और उनके लिए दुआ करो : ऐ 'रब'! जिस प्रकार इन्होंने बचपन में मेरा पालन-पोषण किया है, उसी प्रकार तू भी इनपर दया कर।" —क़ुरआन, 17 : 23-24

कभी-कभी सहानुभूति का एक शब्द, प्रेम से परिपूर्ण एक बात और भलाई के दो बोल का मूल्य भौतिक सहायता से अधिक होता है। क़ुरआन मजीद ने मीठी बोली और अच्छे सम्बोधन को इतना महत्त्व दिया है कि एक स्थान पर इसका वर्णन नमाज़ और ज़कात से पहले किया है :

- "और यह कि लोगों से भली बात करो, नमाज़ क़ायम करो और ज़कात दो।" —क़ुरआन, 2 : 83

एक दरिद्र और निर्धन व्यक्ति की सेवा तो रुपये-पैसे से की जा सकती है, परन्तु जिसके पास स्वतः ही दौलत हो उसे हमारे पैसे की आवश्यकता नहीं है, परन्तु वह हमारी सहानुभूति, प्रेम और नैतिक व्यवहार का मुहताज है। अतः धनवान या निर्धन, हर एक, किसी न किसी रूप में हमारी सेवा का ज़रूरतमन्द हो सकता है।

---

1. हनफ़ी फ़िक़ह की सुप्रसिद्ध पुस्तक 'हिदाया' में है कि आदमी के माँ-बाप चाहे मुसलमान हों या ग़ैरमुसलिम उनका नान-नफ़क़ा (खाना-कपड़ा) उसपर अनिवार्य है। इसका तर्क यह दिया जाता है कि अल्लाह तआला ने ग़ैरमुसलिम माँ-बाप के साथ भी व्यवहार में 'मारूफ़' (प्रचलित व भले तरीक़े) की पाबन्दी का हुक्म दिया है। (क़ुरआन, 31 : 15) इसके तक़ाज़े को इस प्रकार बयान किया गया है, "यह कोई नेकी और मारूफ़ तरीक़ा नहीं है कि आदमी स्वयं तो अल्लाह तआला की नेमतों से फ़ायदा उठाता रहे और माँ-बाप को भूखा मरने के लिए छोड़ दे।" —हिदाया, भाग 2, पृ० 425-426

सेवा के कुछ अन्य तरीक़े

हदीसों में इस पहलू को बहुत स्पष्ट किया गया है कि इनसानों की सेवा केवल रुपया-पैसा ही से नहीं होती, बल्कि किसी असमर्थ या लाचार की सहायता करना, किसी अन्धे को रास्ता दिखाना, रास्ते से कोई कष्टदायक चीज़ हटा देना, किसी को पानी भरकर दे देना, यहाँ तक कि किसी से विनम्रता और सुशीलता से बोलना और अच्छा व्यवहार करना आदि भी उनकी सेवा ही है और रुपया-पैसा ख़र्च करने की भाँति यह भी सदक़ा (दान) है।

हज़रत अबू मूसा अशअरी (रज़ि०) की रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया :

- "हर मुसलमान पर सदक़ा करना अनिवार्य है। इसपर सहाबा (रज़ि०) ने पूछा कि यदि किसी के पास सदक़ा के लिए कुछ न हो तो क्या करे? आप (सल्ल०) ने फ़रमाया : अपने हाथ से दूसरे का कोई काम कर दे, उसके पास जो भी साधन सामग्री हो उससे स्वयं भी फ़ायदा उठाए और दूसरों पर भी ख़र्च करे। सहाबा (रज़ि०) ने अर्ज़ किया कि इसकी भी ताक़त न हो तो क्या किया जाए? आपने फ़माया : किसी पीड़ित तथा मुहताज की (माल के अतिरिक्त किसी अन्य तरीक़े से) सहायता करे। पूछा गया कि यदि यह भी न हो सके तो क्या किया जाए? आपने फ़रमाया : भलाई का आदेश करे या यह फ़रमाया कि नेकी का हुक्म दे। पूछा गया, यदि कोई व्यक्ति यह भी न कर सके तो? आप (सल्ल०) ने फ़रमाया : 'वह बुराई से रुक जाए' उसके लिए यह भी सदक़ा है।"

—बुख़ारी, मुसलिम

इस हदीस के अन्तर्गत मुहद्दिसीन (हदीस के विद्वानों) ने कुछ बातों को स्पष्ट किया है।

आर्थिक सदक़े सम्पन्न लोग ही कर सकते हैं लेकिन सदक़ा और ख़ैरात माल के साथ ही ख़ास नहीं है, इसके और भी तरीक़े हैं। इन तरीक़ों पर आम परिस्थितियों में हर व्यक्ति बिना कठिनाई के अमल कर सकता है। हदीस में अच्छे कर्मों का क्रम बयान नहीं किया गया है, बल्कि उदाहरणों से मसले का स्पष्टीकरण किया गया है। इनके द्वारा यह बताना अभिप्रेत है कि आदमी अच्छे कर्मों में से यदि एक पर अमल न कर सके तो दूसरे पर कर सकता है। जो व्यक्ति इन सबपर अमल कर सके उसे अवश्य ही अमल करना चाहिए। इस हदीस से यह बात भी मालूम होती है कि जहाँ माल ख़र्च करने की आवश्यकता हो वहाँ माल ख़र्च करना ही उत्तम है। उसके स्थान पर जिन कर्मों का उल्लेख किया गया है उनका दर्जा उसके बाद है। हदीस में बुराई से बचने को भी सदक़ा

कहा गया है। यदि आदमी दूसरे के साथ बुराई करने से रुका रहे तो यह अपने आपपर सदक़ा है। यदि उस बुराई का सम्बन्ध स्वयं उसके व्यक्तित्व से हो तो यह उसपर सदक़ा है। हदीस का सारांश यह है कि संपूर्ण सृष्टि के साथ हमदर्दी और दया का व्यवहार होना चाहिए। यह व्यवहार धन के द्वारा और बिना धन के, दोनों प्रकार से संभव है। धन के द्वारा सहायता के दो तरीक़े हैं—एक यह कि व्यक्ति के पास धन मौजूद हो और वह ख़र्च करे। दूसरे यह कि उसके पास धन न हो और वह मेहनत से कमाकर ख़र्च करे। माल के अतिरिक्त जो सहायता होगी उसके भी दो तरीक़े हैं। आदमी किसी का कष्ट दूर करेगा या उसे कष्ट पहुँचाने से बचेगा। हदीस के शब्दों में ये सब वे सदक़े हैं जो एक इनसान दूसरे पर करता है। —फ़त्हुल बारी 3/198

प्रत्येक सेवा दान (सदक़ा) है

उपर्युक्त हदीस का एक और पहलू यह है कि सेवा की धारणा के साथ सामान्यत: बड़ी-बड़ी सेवाओं की ओर ध्यान जाता है। उनको करने के लिए हर व्यक्ति अपने अंदर सामर्थ्य नहीं पाता और छोटी-छोटी सेवाएँ जिन्हें आदमी सरलतापूर्वक कर सकता है उन्हें कोई महत्त्व नहीं दिया जाता। इस प्रकार न बड़ी सेवाएँ हो पाती हैं और न छोटी। हदीस में इस मानसिकता का सुधार किया गया है। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने अपने अनेक कथनों में यह वास्तविकता स्पष्ट की है कि मानवजाति की, छोटी से छोटी और बड़ी से बड़ी जो सेवा भी की जा सकती है, की जानी चाहिए। हर सेवा सदक़ा और उपकार है और इनसान उसके द्वारा अज्र एवं प्रतिदान का अधिकारी होता है। इस सिलसिले की कुछ और हदीसें यहाँ प्रस्तुत की जा रही हैं :

हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया :

- "प्रतिदिन जब सूर्योदय होता है तो आदमी के जोड़-जोड़ पर सदक़ा अनिवार्य (वाजिब) हो जाता है।"

परन्तु सदक़ा माल ही का नहीं होता, बल्कि उसके कुछ अन्य तरीक़े भी हैं। इसको आपने इस प्रकार स्पष्ट किया :

- "कोई व्यक्ति यदि दो आदमियों के बीच न्याय कर दे तो यह भी सदक़ा है, किसी को जानवर पर सवार होने में सहायता कर दे तो यह भी सदक़ा है, सवारी पर किसी का सामान लाद दे तो यह भी सदक़ा है, मुँह से अच्छी बात कहे तो यह भी सदक़ा है, इसी प्रकार नमाज़ के लिए जो क़दम उठाए तो यह भी सदक़ा है। रास्ते से किसी कष्टदायक चीज़ को हटा दे तो यह भी सदक़ा है।"
—बुख़ारी, मुसलिम

हज़रत अबू ज़र (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया :

- "तुम्हारा अपने भाई से मुस्कराकर मिलना सदक़ा है, तुम्हारा नेकी का आदेश देना और बुराई से रोकना सदक़ा है, सुनसान जंगल में जहाँ रास्ते का पता न चले तो तुम्हारा किसी को रास्ता दिखाना सदक़ा है, तुम्हारा रास्ते से गन्दगी, काँटा और हड्डी (जैसी कष्टदायक चीज़ें) हटा देना सदक़ा है, तुम्हारा अपने डोल से पानी भरकर अपने भाई के डोल में डाल देना सदक़ा है। ये सब सदक़े हैं। इनमें से हर काम पर तुम्हें प्रतिदान (सवाब) मिलेगा।"

—तिरमिज़ी

इन हदीसों में इनसानों की सेवा और उनकी भलाई के बहुत-से तरीक़े बताए गए हैं। इनमें से कुछ तो ऐसे हैं कि यदि सेवा की भावना हो तो उनपर बड़ी आसानी से अमल हो सकता है। इस सिलसिले की एक रिवायत हज़रत जाबिर बिन अब्दुल्लाह (रज़ि०) से बयान हुई है। कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया :

- "भलाई का हर काम सदक़ा है।" —बुख़ारी, मुसलिम

यह एक व्यापक हदीस है जो जनसेवा के समस्त रूपों को अपने अन्दर समाहित करती है। मानव-जाति की, जिस रूप में भी सेवा की जाए वह उसपर सदक़ा और एहसान है और सेवा करनेवाला उसके अज्र और प्रतिदान का अधिकारी है।

सदक़ा और ख़ैरात पुण्य और सवाब का काम है, यह बात सबपर स्पष्ट है। इसके महत्त्व एवं उपयोगिता से कोई इनकार नहीं कर सकता। इनसानों की सेवा और उनकी भलाई के हर काम को सदक़ा का रूप देकर उसकी श्रेष्ठता दिलों में बिठा दी गई है। इसके अलावा हिदायत यह की गई है कि भलाई के किसी भी छोटे से छोटे कार्य को भी हीन समझकर उसकी उपेक्षा न की जाए। क्योंकि अल्लाह के बन्दों को जो लाभ भी पहुँचाया जा सकता है उससे हाथ रोक लेना सही नहीं है।

हज़रत अबू ज़र (रज़ि०) की रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया :

- "भलाई के किसी काम को तुच्छ और हीन न समझो चाहे वह तुम्हारा अपने भाई से मुस्कराकर मिलना ही क्यों न हो।" —मुसलिम

इनसानों की सेवा जिस पहलू से और जितनी भी हो सकती है अवश्य करनी चाहिए। यह जहन्नम की यातना से मुक्ति का बहुत बड़ा साधन है। एक बार अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने जहन्नम की भयावहता और हौलनाकी का ज़िक्र किया, उससे अल्लाह की शरण पाने की प्रार्थना की और फ़रमाया :

- "जहन्नम से बचो, यदि कुछ न हो तो छुहारे का एक टुकड़ा सदक़ा करके ही सही, यह भी न हो तो ज़बान से अच्छी बात कहकर ही उससे बचो।"

—बुख़ारी, मुसलिम

- जब किसी ज़रूरतमन्द की सहायता की जाती है तो वह एक प्रकार के आनन्द और राहत का अनुभव करता है। इसी प्रकार अच्छी वाणी भी आनन्द और ख़ुशी प्रदान करनेवाली होती है। अतः दोनों ही सदक़े के रूप हैं। —फ़तहुल बारी 10/345

वास्तविकता यह है कि इनसानों की सेवा और उनकी भलाई चाहने का क्षेत्र इतना व्यापक है कि प्रत्येक स्तर का व्यक्ति इस क्षेत्र में अपना हक़ अदा कर सकता है और वास्तव में उसे अदा करना चाहिए। इसके लिए न तो सम्पन्नता आवश्यक है और न सरकार एवं राज्य के सहयोग ही की आवश्यकता है। सही बात यह है कि धन-दौलत या हुकूमत और प्रशासन के द्वारा केवल कुछ ही क्षेत्रों में सेवा की जा सकती है। अनेक क्षेत्र ऐसे हैं जहाँ व्यक्ति का उच्चतम शिष्टाचार और ऊँचा आचरण ही काम आ सकता है। राज्य या सरकार किसी लाचार को पेंशन, किसी बेरोज़गार को रोज़गार, किसी बेघर को मकान और किसी बीमार और रोगी को चिकित्सा सहायता तो उपलब्ध करा सकती है। परन्तु अपने समस्त साधनों के बावजूद माँ-बाप, पत्नी, बेटी, भाई, मित्र, पड़ोसी और शिष्ट नागरिक का विकल्प नहीं बन सकती। जो भावनात्मक संतुष्टि और उच्च व्यवहार इनसान को लोगों से मिल सकता है वह राज्य की किसी छोटी-बड़ी संस्था से नहीं मिल सकता।

सामयिक सेवा का महत्त्व एवं श्रेष्ठता

अल्लाह के बन्दों की सेवा और उनके साथ अच्छा व्यवहार करने का एक तरीक़ा यह भी है कि उनकी सामयिक और आपात आवश्यकताएँ पूरी की जाएँ। प्रायः इनसान सामयिक और आपात सहायता का बड़ा मुहताज हो जाता है। इसमें थोड़ी-सी बेपरवाई उसे भारी हानि पहुँचा सकती है। कभी सहायता करनेवाला भी सामयिक तौर पर ही कुछ सहायता करने के योग्य होता है, इससे अधिक की उसमें संभावना और गुंजाइश नहीं होती। इस्लाम ने इस बारीकी को महसूस किया है। उसने एक ओर प्रेरणा दी है कि अल्लाह के जिस बन्दे को जिस समय जिस प्रकार की सहायता की आवश्यकता हो, वह उपलब्ध कराई जाए और दूसरी ओर ताकीद की है कि आदमी किसी मुहताज की सामयिक रूप में थोड़ी-बहुत जो कुछ भी सहायता कर सकता हो उसमें संकोच न करे।

यहाँ सामयिक तथा आपात सहायता के कुछ रूपों का उल्लेख किया जा रहा है।

खाना खिलाना

सामयिक सहायता का एक रूप भूखे को खाना खिलाना है। जो व्यक्ति भूख से व्याकुल हो, उसका हक़ है कि तुरन्त उसकी भूख मिटाई जाए। क़ुरआन मजीद ने अल्लाह के उन नेक बन्दों की, जो जन्नत की शाश्वत नेमतों के हक़दार होंगे, प्रशंसा

करते हुए एक स्थान पर कहा है :

- "और वे खाने की इच्छा और आवश्यकता के होते हुए उसे मुहताज, अनाथ और क़ैदी को खिला देते हैं और (कहते हैं) हम तो बस अल्लाह की रज़ामन्दी के लिए तुम्हें खिला रहे हैं। न हम तुमसे कोई बदला चाहते हैं और न धन्यवाद। हम अपने 'रब' की ओर से एक ऐसे दिन का भय रखते हैं जो सख़्त मुसीबत का अत्यन्त लम्बा दिन होगा।" —क़ुरआन, 76 : 8-10

कि॰ भूखे को खाना खिलाने की फ़ज़ीलत और महानता बतानेवाली बहुत-सी हदीसें हैं। यहाँ हम कुछ हदीसों का उल्लेख करते हैं :

- हज़रत अब्दुल्लाह बिन अम्र बिन आस (रज़ि०) रिवायत करते हैं कि एक व्यक्ति ने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से पूछा : "सर्वोत्तम इस्लाम क्या है ?" इसके उत्तर में आपने फ़रमाया : "यह कि तुम (भूखे को) खाना खिलाओ और परिचित तथा अपरिचित दोनों ही को सलाम करो।" —बुख़ारी, मुसलिम

यहाँ प्रश्न शायद इस्लाम की उन स्पष्ट विशेषताओं के विषय में था जिनका सम्बन्ध इनसानों की सेवा और उनकी भलाई से है।

हज़रत अब्दुल्लाह बिन सलाम (रज़ि०) कहते हैं कि जब अल्लाह के रसूल (सल्ल०) मदीना आए तो मैं (अभी, जबकि मैंने इस्लाम ग्रहण नहीं किया था) आपके समक्ष उपस्थित हुआ। जैसे ही आपके पवित्र चेहरे पर नज़र पड़ी मैं तुरन्त समझ गया कि यह किसी झूठे इनसान का चेहरा नहीं है। पहली बात जो आप (सल्ल०) ने उस समय बयान की वह यह थी :

- "ऐ लोगो ! सलाम के प्रचलन को व्यापक बनाओ और इसे फैलाओ, भूखों को खाना खिलाओ, सम्बन्धों को जोड़ो, रात में जब लोग सो रहे हों नमाज़ पढ़ो, अमन-सलामती के साथ जन्नत में दाख़िल हो जाओगे।"

—मिशकात, तिरमिज़ी, इब्न माजा, दारमी

'भूखों को खाना खिलाना' देखने में एक छोटी-सी सेवा है, परन्तु किसी समाज में इसके महत्त्व का एहसास जागृत हो जाए तो कोई भी व्यक्ति भूख-प्यास सहन करने को विवश न होगा, बल्कि ऐसा समाज दरिद्रता और भुखमरी का बड़ी सरलता तथा अति शीघ्रता से उपचार खोज निकालेगा। मदीना के प्रारंभिक काल में जब इस्लामी राज्य की आर्थिक दशा बहुत अधिक मज़बूत नहीं थी, अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने भूख और दरिद्रता की समस्या का समाधान करने के लिए अन्य उपायों के साथ यह उपाय भी अपनाया था। अतः भूखों को खाना खिलाने की प्रेरणा देते हुए आप (सल्ल०) ने फ़रमाया :

- "दो व्यक्तियों का खाना तीन के लिए काफ़ी है और तीन व्यक्तियों का खाना चार व्यक्तियों के लिए काफ़ी हो जाता है।' —बुख़ारी, मुसलिम

यह रिवायत हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) की है। हज़रत जाबिर बिन अब्दुल्लाह (रज़ि०) की रिवायत में इससे आगे की बात कही गई है। वे कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया :

- "एक आदमी का खाना दो के लिए काफ़ी है और दो आदमियों का खाना चार के लिए काफ़ी है, और इसी प्रकार चार का खाना आठ के लिए काफ़ी है।"
—मुसलिम

इसी आशय की एक रिवायत हज़रत उमर (रज़ि०) से भी उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया :

- "एक आदमी का खाना दो आदमियों के लिए काफ़ी है और दो का खाना तीन और चार के लिए काफ़ी है और चार व्यक्तियों का खाना पाँच और छ: के लिए काफ़ी है।"
—इब्न माजा

इन हदीसों में परस्पर कुछ आंशिक भेद है, फिर भी मूलत: जिस बात पर उभारा गया है वह यह है कि आदमी अपने खाने में दूसरे भूखे लोगों को शरीक करे और यह विश्वास रखे कि जो कुछ मौजूद है अल्लाह उसमें बरकत देगा और सबकी आवश्यकता पूरी होगी।

मुहताजों की सहायता करने और भूखों को खाना खिलाने की भावना जिस प्रकार अल्लाह के रसूल (सल्ल०) उभार रहे थे उसका अनुमान हज़रत आइशा (रज़ि०) की एक रिवायत से लगाया जा सकता है।

- "हज़रत आइशा (रज़ि०) कहती हैं कि एक बार एक बकरी ज़बह की गई और उसका गोश्त बाँट दिया गया। आप (सल्ल०) ने पूछा : कुछ गोश्त बचा भी है? मैंने अर्ज़ किया, एक रान के अतिरिक्त कुछ नहीं बचा है। सब दान दे दिया गया। आपने फ़रमाया, नहीं! सब कुछ बचा हुआ है सिवाय एक रान के।"
—तिरमिज़ी

अर्थात गोश्त का जितना हिस्सा सदक़ा कर दिया गया उसका अज्र और प्रतिदान तो सुरक्षित हो गया, उसके बारे में यह क्यों समझा जाए कि वह समाप्त हो गया।

अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के समय में क़ुरबानी का गोश्त सुखाकर काफ़ी दिनों तक प्रयोग करने का रिवाज था। अकाल के समय में आप (सल्ल०) ने आदेश दिया कि तीन दिन से अधिक गोश्त न रखा जाए। इसका कारण हज़रत आइशा (रज़ि०) इन शब्दों में बयान करती हैं :

- "आप (सल्ल०) चाहते थे कि मालदार लोग निर्धनों को (गोश्त) खिलाएँ।"
—बुख़ारी

मुहताजों को खाना खिलाना कुछ सहाबा (रज़ि०) का प्रिय कर्म था। इसमें उनकी कितनी रुचि थी और वे इसका कितना एहतिमाम करते थे इसका अनुमान एक-दो घटनाओं से लगाया जा सकता है।

- हज़रत नाफ़े (रह०) कहते हैं कि हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर (रज़ि०) किसी मुहताज को खाने में साथ किए बिना खाना नहीं खाते थे। —बुख़ारी

हज़रत सुहैब (रज़ि०) के बारे में कहा गया है कि वे ग़रीबों को खाना बहुत खिलाया करते थे। इस सम्बन्ध में उन्होंने एक बार कहा :

- "अल्लाह के रसूल (सल्ल०) फ़रमाया करते थे कि तुममें से श्रेष्ठ व्यक्ति वह है जो ग़रीबों को खाना खिलाए और सलाम का उत्तर दे। आप (सल्ल०) की यही बात मुझे ग़रीबों को खाना खिलाने पर आमादा करती रहती है।"

—मुसनद अहमद

इस विषय की एक बड़ी प्रभावकारी घटना हदीस की किताबों (बुख़ारी, मुसलिम) में है, जिससे हमें बड़ी शिक्षा मिलती है।

● हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) बयान करते हैं कि एक व्यक्ति ने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की सेवा में उपस्थित होकर कहा कि दरिद्रता, उपवास और मुसीबत में घिरा हुआ हूँ। आप (सल्ल०) ने अपनी पत्नियों में से एक के घर से उसके खाने के लिए कुछ मँगवाया, परन्तु वहाँ से उत्तर मिला कि इस समय पानी के अलावा और कुछ नहीं है। फिर आपने दूसरी पत्नी के घर सूचना भेजी परन्तु वहाँ से भी वही उत्तर मिला। इसी प्रकार बारी-बारी से समस्त पत्नियों के यहाँ से यही उत्तर मिला कि इस समय खाने के लिए कुछ भी नहीं है। आप (सल्ल०) ने उपस्थित लोगों से फ़रमाया कि 'कौन इस मेहमान को खाना खिलाएगा कि अल्लाह उसपर दया करे।' यह सुनकर एक अनसारी ने—कुछ रिवायतों में आया है कि वह हज़रत अबू तलहा (रज़ि०) थे—कहा कि यह सेवा मैं करूँगा। अतः वे उसे अपने घर ले गए। पत्नी से पूछा कि तुम्हारे पास खाने को कुछ है? उसने कहा कि केवल बच्चों का खाना है। उन्होंने कहा कि बच्चों को बहलाकर सुला दो और जब खाना लगा दो तो दीपक को ठीक करने के बहाने उसे बुझा देना और यह प्रकट करो कि जैसे हम भी खा रहे हैं। अतः पत्नी ने ऐसा किया और दीपक बुझा दिया। अँधेरे में दोनों प्रकट कर रहे थे कि जैसे वे खाने में सम्मिलित हैं। अतः मेहमान ने पेटभर खाना खा लिया और ये दोनों रातभर भूखे रहे। सुबह को अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की सेवा में उपस्थित हुए। आप (सल्ल०) ने फ़रमाया : 'अल्लाह तआला तुम दोनों के रात के अमल (कर्म) से बहुत प्रसन्न हुआ है।'

इस बारे में यह आयत उतरी (अर्थात यह आयत ऐसे ही अवसर के लिए है) :

"और अपने मुक़ाबले में दूसरों को प्राथमिकता देते हैं चाहे अपनी जगह स्वयं

मुहताज हों। सत्य यह है कि जो लोग अपने दिल की तंगी से बचा लिए गए वही कामयाब होनेवाले हैं।" —क़ुरआन, 59 : 9

खाना खिलाने में सहयोग

किसी मुहताज को खाना खिलाने में पत्नी और सेवक की ओर से जो सहयोग मिलता है उसका उन्हें भी अज्र और प्रतिदान मिलेगा। हज़रत आइशा (रज़ि०) रिवायत करती हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया :

- "जब स्त्री अपने पति के घर को हानि पहुँचाए बिना (किसी मुहताज को) खाना खिलाती है तो उसे इसका अज्र मिलेगा। उसी के समान पति को प्रतिदान (अज्र) मिलेगा और कोषाधिकारी को भी उतना ही प्रतिदान मिलेगा।" —बुख़ारी, मुसलिम

कोषाधिकारी के विषय में इसी अर्थ की एक और हदीस मिलती है। हज़रत अबू मूसा अशअरी (रज़ि०) अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से रिवायत करते हैं कि आप (सल्ल०) ने फ़रमाया :

- "जो मुसलमान कोषाधिकारी उस आदेश को लागू करता है जो उसे दिया गया है। कभी आपने इस प्रकार फ़रमाया कि जिस चीज़ के देने का उसे आदेश दिया गया है वह देता है, पूरा-पूरा देता है और प्रसन्नचित्त होकर देता है, जिस व्यक्ति के सुपुर्द करने के लिए उसे कहा है उसके हवाले करता है, तो वह भी सदक़ा करनेवालों में से एक है।" —मुसलिम

आदमी की पत्नी हो या सेवक या उसका प्रतिनिधि तथा अमीन, उसकी अनुमति ही से उसका माल ख़र्च कर सकते हैं। अनुमति के बिना उन्हें उसके माल में ख़र्च का अधिकार न होगा। परन्तु अनुमति स्पष्ट शब्दों में भी हो सकती है तथा परिचित तरीक़े से और रिवाज के तहत भी। यदि यह बात मालूम हो कि एक विशेष सीमा के भीतर ग़रीबों की सहायता करने या उन्हें खिलाने-पिलाने में पति को कोई आपत्ति नहीं होती तो पत्नी उसी सीमा तक अमल कर सकती है। यदि आपत्ति की आशंका हो तो उसे सावधानी बरतनी चाहिए।

यह तो एक क़ानूनी बात है। वरना आदमी को इतना उदारहृदय तो होना ही चाहिए कि पत्नी या विश्वासपात्र सेवक उसके माल से यदि किसी मुहताज की सहायता कर दे तो उसे हर्ष और प्रसन्नता का अनुभव होना चाहिए कि एक भले काम में उन्होंने उसकी सहायता की है। इससे वह स्वयं भी प्रतिदान का अधिकारी होगा।

एक सहाबी जिनकी उपाधि 'अबिल्लहम' थी, कहते हैं कि मैं अपने स्वामी के आदेशानुसार गोश्त के पार्चे (पतले-पतले टुकड़े) बना रहा था। इतने में एक मुहताज

आया तो मैंने उसे कुछ गोश्त दे दिया। जब मेरे स्वामी को इसकी सूचना मिली तो उसने मुझे मार दिया। मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से इसका ज़िक्र किया तो आपने उसे बुलाकर मारने का कारण पूछा, तो उसने कहा कि इसने मेरी अनुमति के बिना मेरी चीज़ दूसरों को दी है। आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "अज्र तुम दोनों के बीच में विभाजित होगा।" (मुसलिम) अर्थात तुम दोनों को अपनी-अपनी हैसियत के अनुसार अज्र मिलेगा। ग़ुलाम ने यह समझकर सदक़ा किया था कि स्वामी को इसपर आपत्ति न होगी, अतः वह भी प्रतिदान का अधिकारी होगा। स्वामी का क्योंकि माल ख़र्च हुआ अतः वह भी प्रतिदान का अधिकारी ठहरा।

पानी पिलाना

पानी इनसान की एक अनिवार्य आवश्यकता है। चूँकि अल्लाह तआला ने अपनी यह नेमत बड़ी प्रचुर मात्रा में प्रदान की है, इसलिए इसके मूल्य एवं महत्त्व का अनुभव नहीं किया जाता है। जिस व्यक्ति के कण्ठ (हलक़) में प्यास के कारण काँटे पड़ रहे हों उसके लिए इस बात का बड़ा महत्त्व है कि समय पर उसे दो घूँट पानी मिल जाए। इस्लाम की दृष्टि में जिस प्रकार भूखे को खाना खिलाना पुण्य (सवाब का काम) है उसी प्रकार प्यासे को पानी पिलाना भी पुण्य है। एक हदीस में है :

- "जो मुसलमान किसी मुसलमान को उसकी प्यास के समय पानी पिलाए, क़ियामत के दिन अल्लाह तआला उसे वहाँ का मुहरबन्द पेय पिलाएगा।"
  —अबू दाऊद, तिरमिज़ी

- ● हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) की रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया : एक व्यक्ति सुनसान जंगल में जा रहा था कि उसे बहुत तेज़ प्यास लगी। इसी हालत में उसने एक कुआँ देखा तो उतरकर पानी पिया। जब ख़ूब तृप्त होकर बाहर आया तो देखा कि एक कुत्ता प्यास की तीव्रता से ज़बान निकाले हुए गीली ज़मीन चाट रहा है। उस व्यक्ति ने सोचा कि जिस प्रकार थोड़ी देर पहले मैं प्यास से तड़प रहा था उसी प्रकार यह कुत्ता भी तड़प रहा है। वह तुरन्त कुएँ में उतरा और अपने (चमड़े के) मोज़े में पानी भरकर लाया और उस बेज़बान पशु को पिलाया। अल्लाह तआला ने उसके इस अमल की क़द्र की और उसे बख़्श दिया। सहाबा ने यह सुनकर पूछा : क्या पशुओं की सेवा करने में भी पुण्य और सवाब है? आप (सल्ल०) ने फ़रमाया : प्रत्येक तरोताज़ा जिगर (जीवित प्राणी) की सेवा में अज्र और प्रतिदान है।
  —बुख़ारी, मुसलिम

एक रिवायत में इसे 'बनी इसराईल' की एक व्यभिचारिणी का क़िस्सा बताया गया है और उसमें कहा गया है कि अल्लाह तआला ने उसके इस अमल के कारण उसको

क्षमादान दे दिया। —मुसलिम

एक व्यक्ति को अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कुछ अच्छे कामों की हिदायत की, उसके बाद फ़रमाया :

- "यदि तुम इसकी शक्ति नहीं रखते तो भूखे को खाना खिलाओ और प्यासे को पानी पिलाओ।" —अहमद 4/299, बैहक़ी, तरग़ीब व तरहीब

खाने की तैयारी में आंशिक सहायता करना

खाने की तैयारी में आटा, चावल, दाल, गोश्त, सब्ज़ी, नमक, पानी और ईंधन आदि की आवश्यकता होती है। सेवा का एक तरीक़ा यह भी है कि कुछ खाद्य सामग्री के द्वारा सहायता की जाए या ईंधन उपलब्ध करा दिया जाए। इसका भी महत्त्व है। इनमें से कुछ चीज़ें तो ऐसी हैं कि हदीस में, उन्हें न देने से रोका गया है। वह इनसान ही क्या जो किसी की पानी और नमक की आवश्यकता भी पूरी न कर सके!

- हज़रत आइशा (रज़ि०) फ़रमाती हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से पूछा कि ऐ अल्लाह के रसूल! वह क्या चीज़ है जिससे मना करना नाजाइज़ है? आपने फ़रमाया :"पानी, नमक और आग।"मैंने पूछा कि पानी के महत्त्व से तो हम सब परिचित हैं, परन्तु नमक और आग का क्या महत्त्व है? आपने फ़रमाया : "ऐ हुमैरा! (हज़रत आइशा की उपाधि) जिसने किसी को आग उपलब्ध कराई, मानो उसने उस पूरे खाने का सदक़ा किया जो उस आग से तैयार हुआ है। जिसने नमक दिया उसने मानो उस पूरे खाने का सदक़ा किया जो उस नमक के कारण स्वादिष्ट हुआ है, जिसने किसी मुसलमान को किसी ऐसी जगह पानी पिलाया जहाँ पानी उपलब्ध ही न था तो मानो उसने उसे जीवित किया।" —इब्न माजा

कपड़े उपलब्ध कराना

इनसान की मूल आवश्यकताओं में भोजन के बाद कपड़े का सबसे अधिक महत्त्व है। उसकी अन्य आवश्यकताओं की तरह इस आवश्यकता का भी स्थायी रूप से समाधान होना चाहिए। इस्लाम ने उसके सामयिक एवं अस्थायी समाधान को भी महत्त्व दिया है। किसी वस्त्रहीन और नग्न शरीर-इनसान को कपड़े उपलब्ध कराने का प्रतिदान (बदला) कई हदीसों में बयान हुआ है।

हज़रत अब्दुल्लाह बिन अब्बास (रज़ि०) से उल्लिखित है कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को फ़रमाते हुए सुना :

- "जो मुसलमान किसी मुसलमान को कपड़ा पहनाए वह अल्लाह की सुरक्षा में

आ जाता है, जब तक कि उसके पास उसका एक टुकड़ा भी है।" —मिशकात

यदि कोई व्यक्ति किसी आदमी को शरीर ढाँकने के लिए नया कपड़ा न दे सके तो पुराना कपड़ा ही उसे पहना दे। उसका भी बदला उसे मिलेगा।

हज़रत उमर (रज़ि०) फ़रमाते हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को फ़रमाते हुए सुना है कि जो व्यक्ति नया कपड़ा पहने और यह दुआ पढ़े :

- "प्रशंसा अल्लाह ही के लिए है जिसने मुझे कपड़ा पहनाया जिससे मैं अपने गुप्तांग छिपाता हूँ और अपने जीवन में सौंदर्य प्राप्त करता हूँ।"

फिर यह कपड़ा जब पुराना हो जाए तो उसे सदक़ा कर दे। इससे वह अपने जीवन में भी और मरने के बाद भी अल्लाह की सुरक्षा में रहेगा। —तिरमिज़ी, इब्न माजा

माँगनेवाले का हक़ पहचानना

सामयिक और आपात सहायता का मुहताज केवल वही नहीं होता जो दरिद्र और निर्धन हो, बल्कि उसकी आवश्यकता सम्पन्न और मालदार व्यक्ति को भी पड़ सकती है। इसका सम्बन्ध आर्थिक हैसियत से अधिक उन परिस्थितियों से होता है जिनमें वह आपातकालीन तरीक़े से घिर गया है। रास्ते में जब किसी की जेब कट जाए और उसका अपने घर पहुँचना कठिन हो जाए तो आपका नैतिक कर्त्तव्य है कि आप उसकी सहायता करें। धनवान से धनवान व्यक्ति भी किसी समय विवश और लाचार हो जाता है। इस स्थिति में हक़ बनता है कि उसकी आवश्यकता पूरी की जाए। यही वास्तविकता एक हदीस में इस प्रकार बयान की गई है जिसकी रिवायत हज़रत इमाम हुसैन (रज़ि०) ने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से की है :

- "माँगनेवाला यदि घोड़े पर सवार होकर आए तो भी (तुमपर) उसका हक़ है।"

—अबू दाऊद

इमाम ख़त्ताबी फ़रमाते हैं कि हदीस का अर्थ यह है कि माँगनेवाले से अच्छा गुमान रखा जाए और तुरन्त ही उसे झूठा न कह दिया जाए क्योंकि देखने में वह कितनी ही अच्छी स्थिति में क्यों न हो और सवारी के लिए अपने पास घोड़ा ही क्यों न रखता हो, इसकी संभावना निश्चित रूप से है कि वह किसी आपात संकट या क़र्ज़ में फँस गया हो। स्पष्ट है कि इन परिस्थितियों में उसके लिए सदक़ा लेना जाइज़ हो जाता है। कुछ और कारण बताने के बाद कहते हैं कि विभिन्न कारण ऐसे हो सकते हैं जिनमें माँगनेवाले की स्पष्ट दशा को देखकर उसे लौटा देना उचित नहीं है।

—ख़त्ताबी-मआलिमुस्सुनन 2/76

हदीस में एक ओर तो माँगने से रोका गया है और पेशेवर भिखारियों की निन्दा की गई है, दूसरी ओर यह हिदायत भी की गई है कि यदि कोई व्यक्ति किसी आवश्यकता

के तहत हाथ फैलाए तो उसकी आवश्यकता जिस हद तक संभव हो पूरी कर दी जाए।

एक बार उम्म बुजैद (रज़ि०) ने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से अर्ज़ किया कि ऐ अल्लाह के रसूल! कभी कोई मुहताज मेरे दरवाज़े पर आ जाता है और मेरे पास उसे देने के लिए कुछ नहीं होता तो बड़ी शर्म आती है। आपने फ़रमाया : माँगनेवाले को खाली हाथ न लौटाओ, कुछ न हो तो उसे जला हुआ खुर (मामूली चीज़) ही दे दो।'

—तिरमिज़ी, अबू दाऊद

माँगनेवाले के साथ जो बरताव होना चाहिए उसका एक उत्कृष्ट उदाहरण निम्नलिखित क़िस्से से मिलता है। एक बार अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने पूछा कि आज किसी ने किसी मुहताज को खाना खिलाया है? हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) कहते हैं कि इसके बाद मैं मस्जिद गया तो देखा कि एक व्यक्ति माँग रहा है, मेरा बेटा अब्दुर्रहमान वहीं रोटी का एक टुकड़ा खा रहा था, मैंने वह टुकड़ा उसके हाथ से लेकर माँगनेवाले को दे दिया। —अबू दाऊद

बीमार से मुलाक़ात और सेवा करना

रोगी को देखने (अयादत करने के लिए) जाना एक सामान्य मानव-प्रवृत्ति है। इस्लाम ने इस पर विशेष ज़ोर दिया है। इस सिलसिले में हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) की एक हदीस, जो इससे पहले गुज़र चुकी, के एक अंश का भावार्थ यहाँ प्रस्तुत करना उचित होगा। इसके अनुसार, एक रोगी की सांत्वना, सेवा और हालचाल पूछने के लिए उसके पास जाना एक ऐसा काम है मानो खुद अल्लाह बीमार पड़ा हो और कोई उससे मिलने जाए। इससे अनुमान होता है कि इस्लाम की दृष्टि में बीमार की अयादत कितना महान कार्य है।

रोगी को देखने जाना या उसकी सेवा करना कभी-कभी क़ानूनी अधिकार का रूप धारण कर लेता है। जो व्यक्ति ठीक समय पर इस अधिकार को पूरा करे वह शरीअत की दृष्टि में बड़े अज्र और प्रतिदान का अधिकारी है।

कठिनाइयों के स्थायी समाधान की आवश्यकता

कितनी अच्छी बात है और कितने प्रतिदान (सवाब) का काम है कि यदि कोई व्यक्ति माँगे तो दो-चार रुपयों से उसकी सहायता कर दी जाए, भूख से ग्रस्त किसी व्यक्ति को खाना खिला दिया जाए और जो वस्त्रहीन है उसे शरीर छिपाने के लिए कपड़े उपलब्ध करा दिया जाए। हममें से बहुत-से लोग, जिनको अल्लाह के द्वारा सौभाग्य प्राप्त है, इसपर अमल करते हैं और सवाब कमाते हैं, परन्तु क्या जनसेवा केवल यही है? क्या इतना कर देने से उसका पूरा हक़ अदा हो जाता है? आइए, इन प्रश्नों पर ज़रा विस्तार के साथ ग़ौर करें।

यह बात भी महत्त्व रखती है कि किसी मुहताज की आपात रूप से कुछ छोटी-बड़ी सहायता कर दी जाए, परन्तु यदि आवश्यकता सामयिक नहीं है तो स्वाभाविक रूप में उसकी सहायता भी उस समय तक जारी रहनी चाहिए जबतक कि आवश्यकता बाक़ी है। जिस व्यक्ति की कठिनाइयाँ अधिकतर बड़े सहयोग की माँग करती हों या जहाँ दीर्घकाल तक सहयोग की आवश्यकता हो वहाँ ज़रूरी है कि सहयोग भी उसी प्रकार का किया जाए। जो व्यक्ति नाना प्रकार की जटिल कठिनाइयों में घिरा हुआ हो उसकी समस्याओं का समाधान उसी समय होगा जबकि उसे उन कठिनाइयों से निकलने के लिए ज़रूरी सहूलतें उपलब्ध करा दी जाएँ। उसकी समस्याओं का अस्थायी नहीं, बल्कि स्थायी समाधान खोजा जाए और वह जिन कारणों से जीवन की दौड़-धूप एवं प्रयत्नों में पीछे रह गया है उनको दूर किया जाए, उसकी दरिद्रता का उपचार किया जाए, उसे इस योग्य बनाया जाए कि वह भूखा और नंगा न रहे और उसे अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए हर समय किसी का मुहताज न रहना पड़े।

यदि यह वास्तविकता हमारे सामने रहे तो जनसेवा के बारे में हमारा दृष्टिकोण बदल सकता है और हम उसकी विस्तृत माँगों के बारे में ग़ौर कर सकते हैं। हम इसे कुछ उदाहरणों के द्वारा स्पष्ट करेंगे।

मुहताजों और विधवाओं की सेवा की व्यापक धारणा

किसी दरिद्र और मुहताज को एक समय का खाना खिलाना भी अज्र का काम है। क़ुरआन और हदीस में इसकी श्रेष्ठता का उल्लेख है और इसकी प्रेरणा भी दी गई है, परन्तु एक मुहताज जबतक मुहताज है, उसका हक़ बाक़ी रहेगा और व्यक्ति एवं राज्य दोनों की ही यह ज़िम्मेदारी है कि उसे इस दशा से निकालें और उसकी मुहताजी को

स्थायी रूप से समाप्त करने का प्रयत्न करें ताकि वह समाज में प्रतिष्ठित और संतोषजनक जीवन बिता सके। इसकी श्रेष्ठता हदीस में इस प्रकार बयान हुई है कि हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया :

- "विधवाओं और मुहताजों के लिए दौड़-धूप करनेवाला अल्लाह के मार्ग में जिहाद करनेवाले या रात में खड़े होनेवाले (अर्थात नमाज़ पढ़नेवाले) और दिन में रोज़े रखनेवाले जैसा है।" —बुख़ारी, मुसलिम

विधवाओं और मुहताजों के लिए दौड़-धूप करने में वे समस्त प्रयास शामिल हैं जो उनकी भलाई के लिए किए जाएँ। इनमें उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति, उनके लिए रोज़गार उपलब्ध कराना और उनको समाज में सम्मानपूर्ण जीवन बिताने के योग्य बनाना सभी कुछ आ जाता है। इमाम नववी कहते हैं :

"दौड़-धूप करनेवाले से अभिप्राय वह व्यक्ति है जो उनकी आजीविका के लिए दौड़-धूप करे और उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रयत्न एवं परिश्रम करे।" —शरह मुसलिम, 2/411

इसकी व्याख्या हाफ़िज़ इब्न हजर ने इस प्रकार की है :

"विधवाओं और मुहताजों को जो चीज़ भी लाभ पहुँचाए उसे उनको प्राप्त कराने में भाग-दौड़ करनेवाला।" —फ़तहुल बारी, 9/402

मुहताज दो प्रकार के होते हैं। इनमें से अनेक तो अपनी आवश्यकताएँ निस्संकोच बयान करके सहायता माँगते फिरते हैं। परन्तु कुछ ज़रूरतमन्द ऐसे भी होते हैं जिनका स्वाभिमान और आत्मसम्मान उन्हें दूसरों के आगे हाथ फैलाने की अनुमति नहीं देता। ऐसे ही लोग समाज की तवज्जोह के अधिक हक़दार हैं, और इनकी आवश्यकताओं की पूर्ति की अधिक चिन्ता होनी चाहिए।

हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) की रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया :

- "मुहताज (मिसकीन) वह नहीं है जो माँगने के लिए हाथ फैलाए, लोगों के पीछे-पीछे फिरे और तुम उसे एक-दो कौर खिला दो या एक-दो खजूरें दे दो।" लोगों ने प्रश्न किया कि फिर मुहताज कौन है? आपने फ़रमाया, "मुहताज वह है जिसके पास न तो इतना माल है जो उसे दूसरों (की मदद लेने) से बेपरवा कर दे और न उसकी सही हालत का पता चल पाता है ताकि उसे सदक़ा और ख़ैरात दी जाए, वह लोगों से कुछ नहीं माँगता।" —मुसलिम

अनाथ के भरण-पोषण का सही अर्थ

क़ुरआन और हदीस में अनाथों के साथ अच्छे व्यवहार की बार-बार ताकीद की गई है। यह सद्व्यवहार सामयिक भी हो सकता है, परन्तु इसकी व्यापक माँगें उसी

समय पूरी होंगी जबकि एक लम्बी अवधि तक उसके साथ अच्छा व्यवहार किया जाए और उसे इस योग्य बना दिया जाए कि उसे आर्थिक स्थिरता प्राप्त हो, ताकि वह धार्मिक और नैतिक दृष्टि से समाज का उत्तम व्यक्ति बन सके। इन माँगों की ओर हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) की यह रिवायत इशारा करती है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया :

- "अनाथ का भरण-पोषण करनेवाला, चाहे वह उसका नातेदार हो अथवा कोई अन्य, मैं और वह जन्नत में इन दो उँगलियों की भाँति (समीप) होंगे। इमाम मालिक ने अँगूठे के पासवाली और बीच की उँगली से इशारा करके बताया।"
  —मुसलिम

इस हदीस में शब्द भरण-पोषण बहुत महत्त्वपूर्ण है। इसमें उसका पालन-पोषण भी सम्मिलित है और शिक्षण-प्रशिक्षण तथा आर्थिक स्थिरता का प्रावधान भी। इमाम नववी ने इसकी व्याख्या इन शब्दों में की है :

"अनाथ का भरण-पोषण करनेवाला अर्थात उसके खाने, कपड़े और शिक्षा व प्रशिक्षण का भार उठानेवाला। यह श्रेष्ठता उस व्यक्ति को भी प्राप्त होगी जो अपने माल से उसका भरण-पोषण करे और वह व्यक्ति भी उसका हक़दार होगा जो अनाथ का भरण-पोषण उसी के माल से शरीअत के उन नियमों के अनुसार करे, जिनका हक़ उसे अभिभावक की हैसियत से दिया गया है।"
—शरह मुसलिम, 2/411

जो व्यक्ति इन तक़ाज़ों को जिस सीमा तक पूरा करेगा उसी सीमा तक वह अज्र, प्रतिदान और श्रेष्ठता का हक़दार होगा और जो उचित अर्थों में हक़ अदा करेगा उसे जन्नत में अल्लाह के रसूल (सल्ल०) का साथ भी प्राप्त होगा।

व्यवसाय एवं काम में लगाने की प्रेरणा

अपने अन्तिम हज के अवसर पर अल्लाह के रसूल (सल्ल०) सदक़े का माल वितरित कर रहे थे। दो व्यक्ति आए और प्रार्थना की कि उस माल में से कुछ उन्हें भी दिया जाए। आप (सल्ल०) ने देखा कि वे स्वस्थ और पुष्ट हैं तो अप्रसन्नता के साथ फ़रमाया :

- "यदि तुम चाहो तो मैं तुम्हें सदक़े का माल दे दूँ, परन्तु ध्यान रखो कि इसमें किसी मालदार का तथा किसी स्वस्थ आदमी का जो अपनी रोज़ी कमा रहा हो, कोई हिस्सा नहीं है।"
  —अबू दाऊद

इस हदीस में 'जो स्वस्थ हो और अपनी रोज़ी कमा रहा हो' का वाक्य बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है। अर्थात ज़कात में किसी ऐसे व्यक्ति का भाग नहीं है जो शक्तिशाली हो

और जो आजीविका कमा रहा हो। इमाम ख़त्ताबी ने इससे निम्नलिखित तथ्य को प्रमाणित किया है :

> "हदीस से यह बात निकलती है कि किसी को ज़कात के धन से, उसकी आजीविका का साधन देखे बिना केवल इसलिए इनकार नहीं किया जाएगा कि वह शक्तिशाली और स्वस्थ है। क्योंकि कुछ लोग सशक्त शरीर के बावजूद कौशलहीन (बेहुनर) होते हैं और वे अपने लिए कुछ नहीं कर पाते। हदीस से मालूम होता है कि जिस व्यक्ति की ऐसी दशा हो, सदक़े में उसका भी हक़ है। उसे इससे रोका नहीं जाएगा।" —मआलिमुस्सुनन, 2/62

इसका अर्थ यह है कि एक व्यक्ति स्वस्थ तो है परन्तु आजीविका नहीं रखता अथवा उसके पास रोज़गार तो है परन्तु उसके लिए नाकाफ़ी है तो सदक़ा और ख़ैरात से उसकी सहायता की जा सकती है और उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सकती है। आज कितने ही लोग हैं जो मेहनत और मशक़्क़त तो कर सकते हैं परन्तु केवल पूँजी न होने के कारण आजीविका का कोई साधन नहीं अपना सकते और निर्धनता एवं तंगदस्ती का जीवन बिताने पर विवश होते हैं। यदि उनकी इस बाधा को दूर कर दिया जाए तो वे अपने पैरों पर खड़े हो सकते हैं और उन्हें आर्थिक स्थिरता प्राप्त हो सकती है, परन्तु हमारे पास इसकी कोई योजना नहीं है, बल्कि शायद कि हमारा ज़ेहन ही इसके विचार से ख़ाली है।

उद्योग-व्यवसाय में सहयोग का महत्त्व

हज़रत अबू ज़र (रज़ि०) अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से हुई अपनी एक बातचीत बयान करते हैं कि मैंने आपसे पूछा कि सबसे अच्छा और श्रेष्ठ कर्म कौन-सा है? आप (सल्ल०) ने फ़रमाया :

- "अल्लाह पर ईमान और उसके मार्ग में जिहाद।"

  मैंने पूछा : "किस प्रकार के ग़ुलाम को आज़ाद करना अधिक श्रेष्ठ है?"

  आप (सल्ल०) ने फ़रमाया : "वह ग़ुलाम जिसका मूल्य अधिक हो और जो उसके मालिक के निकट अधिक उत्तम हो।"

  मैंने पूछा : "यदि मैं ऐसा न कर सकूँ?"

  आपने फ़रमाया : "उस व्यक्ति की सहायता करो जिसके बच्चे निर्धनता के कारण नष्ट हो रहे हों। अथवा जो व्यक्ति (ग़रीबी की वजह से) अपना काम न कर सके।"

  मैंने पूछा : "यदि यह भी न कर सकूँ?"

  आपने फ़रमाया : "लोगों को अपने शर (बुराई) से बचाओ। यह भी एक

सदक़ा है जो तुम अपने आप पर करोगे।" —बुख़ारी, मुसलिम

इस हदीस में पहले अल्लाह पर ईमान, अल्लाह के रास्ते में जिहाद और ग़ुलामों को आज़ाद करने की श्रेष्ठता बयान हुई है। इसके बाद अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने जो फ़रमाया उसका मतलब यह है कि 'जो व्यक्ति निर्धन हो और जिसके बाल-बच्चों के निर्वाह का कोई साधन न हो उसकी सहायता करो। उसे नष्ट होने से बचाओ।' इस सहायता की मात्रा या इसका रूप निर्धारित नहीं किया गया है। इसे उस व्यक्ति की दशा और सहायता करनेवाले की हैसियत पर छोड़ दिया गया है। जिस प्रकार की आवश्यकता है उसी प्रकार की सहायता व्यक्ति को अपनी हैसियत के अनुसार करनी चाहिए।

एक अन्य रिवायत में है कि तुम किसी ऐसे व्यक्ति की सहायता करो जिसके हाथ में कोई उद्योग या पेशा है।[1] उसकी सहायता रुपया-पैसा, शिल्प सहयोग, यंत्र, उपकरण और मशीन उपलब्ध कराके, पैदावार की ख़रीद-बिक्री के लिए बाज़ार और मार्केट पैदा करके की जा सकती है। उद्योगी की सहायता का उल्लेख विशेष रूप से इसलिए किया गया है कि इसकी कठिनाइयों का प्रायः एहसास नहीं होता और इनसे सम्बन्धित सहायता की ओर ध्यान नहीं जाता।

इसके बाद आप (सल्ल०) ने फ़रमाया कि "जो व्यक्ति कोई काम न कर सकता हो।" हदीस में अरबी शब्द 'अख़रक़' आया है। 'अख़रक़' उस व्यक्ति को कहते हैं जो 'कौशलहीन हो या जो कोई काम भली-भाँति न कर सकता हो।' मानो पहले शिल्पकार व हुनरमन्द की सहायता का आदेश दिया गया। फिर शिल्पहीन या कौशलहीन व्यक्ति की सहायता की ओर ध्यान दिलाया गया। अभिप्राय यह है कि जो व्यक्ति शिल्पहीन और बेहुनर है या अपना काम भली-भाँति नहीं कर पाता है उसकी सहायता की जाए। यदि समाज इस ओर से सचेत हो और ऐसी संस्थाएँ काम करने लगें जहाँ शिल्पकारी की शिक्षा दी जाए, बेहुनर लोगों को हुनरमन्द बनाया जाए और उनके लिए व्यवसाय के अवसर उपलब्ध कराए जाएँ तो यह जनसेवा का उत्तम रूप हो सकता है और इससे कमज़ोर वर्गों की आर्थिक समस्याएँ भी बड़ी हद तक हल हो सकती हैं।

1. विस्तृत जानकारी के लिए देखें, नववी : शरह मुसलिम 1/62, इब्न हजर : फ़तहुल बारी 5/90

सेवा के कुछ निर्धारित काम

इनसान की आपात और सामयिक सेवा तथा उसकी समस्याओं और कठिनाइयों के स्थायी समाधान की ओर ध्यान दिलाने के साथ ही क़ुरआन और हदीस में सेवा के कुछ निश्चित पहलुओं का भी उल्लेख है। ये वे पहलू हैं जो समाज को ऊपर उठाने में बड़ा महत्त्व रखते हैं तथा आर्थिक एवं वित्तीय हैसियत से उनके दूरगामी परिणाम निकलते हैं।

आर्थिक सहयोग

सेवा का एक तरीक़ा आर्थिक सहयोग है। इसका महत्त्व स्पष्ट है। क़ुरआन ने नातेदारों का हक़ पहचानने, कमज़ोरों, लाचारों और महरूमों को आर्थिक सहयोग देने पर बड़ा ज़ोर दिया है। क़ुरआन में है:

- "नेकी यह नहीं है कि तुमने अपने चेहरे पूर्व की ओर कर लिए या पश्चिम की ओर, बल्कि नेकी यह है कि आदमी अल्लाह को और अन्तिम दिन को और फ़िरिश्तों को और अल्लाह की उतारी हुई किताब और उसके नबियों को दिल से माने और माल से प्रेम होने के बावजूद उसे नातेदारों और अनाथों पर, निर्धनों और मुसाफ़िरों पर, मदद के लिए हाथ फैलानेवालों पर और ग़ुलामों की रिहाई पर ख़र्च करे। और 'नमाज़' क़ायम करे और 'ज़कात' दे। और नेक वे लोग हैं कि वचन दें तो उसे पूरा करें और तंगी और विपत्ति के समय में और युद्ध में धैर्य दिखाएँ। ये हैं सच्चे लोग और यही लोग (अल्लाह का) डर रखनेवाले हैं।" —क़ुरआन, 2 : 177

इस आयत में पहले 'किताबवालों' की परम्परागत दीनदारी की आलोचना की गई है, इसके बाद वास्तविक दीनदारी (धार्मिकता) बताई गई है। मूल अरबी में 'बिर्र' शब्द का प्रयोग हुआ है जो बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है। इसका अर्थ हक़ अदा करने का है। इसमें अल्लाह के अधिकार भी आते हैं और बन्दों के अधिकार भी। दोनों ही के अधिकारों का पहचानना आवश्यक है। आदमी नेकी और तक़्वा (परहेज़गारी) के उत्कृष्ट पद को उसी समय पा सकता है जबकि उसके हृदय में ईमान की ज्योति जगमगा रही हो और वह नातेदारों, अनाथों, मुहताजों, यात्रियों, माँगनेवालों, अधीनों, ग़ुलामों और समाज के अन्य कमज़ोर व्यक्तियों और वर्गों पर अपना वह धन ख़र्च करे जिससे वह प्रेम करता है। 'नमाज़' और 'ज़कात' का वर्णन भी इसी वास्तविकता को समझाने के लिए है। 'नमाज़' अल्लाह से सम्बन्ध और 'ज़कात' इनसानों की सेवा के पूर्णतया निश्चित रूप हैं। कुछ अन्य आयतों में यह वास्तविकता स्पष्ट की गई है कि

इनसान का माल केवल उसका ही नहीं है, बल्कि उसमें समाज के कमज़ोरों और निर्धनों का भी हक़ है, उसके लिए इस हक़ का अदा करना अनिवार्य है। क़ुरआन में है :

- "नातेदारों को उसका हक़ दो और मुहताज़ और मुसाफ़िर को उसका हक़ दो, और अपव्यय (फ़िज़ूल-खर्ची) न करो। अपव्यय करनेवाले लोग शैतान के भाई हैं और शैतान अपने 'रब' का कृतघ्न (नाशुक्रा) है।"

—क़ुरआन, 17 : 26-27

यहाँ यह बताने के बाद कि इनसान के माल में दूसरों का भी हक़ है, अपव्यय और फ़िज़ूलख़र्ची से रोका गया है। इसका कारण यह है कि जो व्यक्ति अपव्यय करने में लिप्त हो गया हो वह दूसरों का हक़ नहीं पहचान सकता।

यही बात एक अन्य प्रसंग में सूरा रूम में आई है :

- "क्या इन लोगों ने देखा नहीं कि अल्लाह जिसके लिए चाहता है रोज़ी कुशादा कर देता है, और (जिसके लिए चाहता है) नपी-तुली कर देता है। निस्संदेह इसमें बहुत-सी निशानियाँ हैं उन लोगों के लिए जो ईमान रखते हैं। (जब यह सत्य है कि जिसके पास जो कुछ है वह अल्लाह ही का दिया हुआ है) तो तुम नातेदार को उसका हक़ दो और मुहताज और मुसाफ़िर को (उसका हक़)। यह उत्तम है उनके लिए जो अल्लाह की ख़ुशी चाहते हैं और वही सफल है।"

—क़ुरआन, 30 : 37-38

उपरोक्त सूरा 'बनी इसराईल' और सूरा 'रूम' दोनों ही मक्का में उतरी थीं। मक्का में 'ज़कात' फ़र्ज़ नहीं हुई थी, परन्तु इन आयतों में नातेदारों, मुहताजों और मुसाफ़िरों का हक़ बताया गया है। इमाम राज़ी (रह०) सूरा रूम के तहत कहते हैं कि इसमें उन लोगों का वर्णन है जिनके साथ अच्छा व्यवहार करना अनिवार्य है। 'ज़कात' के लिए आवश्यकता से अधिक धन पर एक वर्ष का बीतना शर्त है, परन्तु यहाँ यह शर्त नहीं है। इनसान को हक़दारों के साथ हर दशा में अच्छा व्यवहार करना होगा क्योंकि यहाँ (ज़कात का नहीं) आम लोगों के साथ दया करने का उल्लेख है। ये तीनों वर्ग वे हैं जिनके साथ एहसान यानी उपकार का रवैया अपनाना आवश्यक है, चाहे उपकार करनेवाले के पास आवश्यकता से अधिक माल हो या न हो। —तफ़सीरे कबीर 6/564

इन आयतों पर एक और पहलू से विचार कीजिए। इनमें यह धारणा दी गई है कि समाज के कमज़ोर व्यक्तियों पर माल ख़र्च करके इनसान उनपर एहसान नहीं करता, बल्कि यह उनका हक़ है जिसे वह अदा करता है। यही भावना पूँजीपति को कमज़ोरों का शोषण करने से रोकती है। अगर पूँजीपति को यह एहसास हो कि उसकी दौलत में दूसरों का हक़ है और इस हक़ का अदा करना आवश्यक है तो वह संघर्ष उत्पन्न न हो जो आज धनी और निर्धन के बीच पाया जाता है।

क़र्ज़ के द्वारा सहायता करना

कभी-कभी आदमी को अपनी आर्थिक दशा सुधारने या किसी आकस्मिक आवश्यकता को पूरा करने के लिए आर्थिक सहायता की सख़्त ज़रूरत पड़ती है। यदि सहायता न पहुँचे तो हालात अधिक ख़राब हो सकते हैं और उसकी कठिनाइयों में वृद्धि हो सकती है। उसकी सहायता का एक तरीक़ा यह भी है कि उसे क़र्ज़ दिया जाए ताकि वह ठीक समय पर अपनी आवश्यकता भी पूरी कर ले और क़र्ज़ देनेवाले को उसकी रक़म भी लौटा दे। यह भी वास्तव में किसी ज़रूरतमन्द के साथ सहयोग का एक रूप है। हदीसों में इसकी श्रेष्ठता और प्रतिदान (सवाब) बताया गया है। हज़रत अब्दुल्लाह बिन मसऊद (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया :

- "जो मुसलमान किसी मुसलमान को दो बार क़र्ज़ देता है मानो वह एक बार सदक़ा करता है।" —इब्न माजा

इमाम शौकानी कहते हैं कि क़र्ज़ की श्रेष्ठता के विषय में हदीसें मौजूद हैं। उनका समर्थन क़ुरआन और हदीस के उन सामान्य बयानों से भी होता है जिनमें मुसलमानों की आवश्यकता पूरी करने, उनकी सहायता करने, उनकी कठिनाइयों का निवारण करने और उनकी कंगाली एवं फ़ाक़े को दूर करने का स्पष्ट उल्लेख है। इसमें क़र्ज़ देना भी सम्मिलित है। मुसलमानों के बीच इसके जाइज़ होने में कोई मतभेद नहीं है। इब्न रसलान कहते हैं कि इसमें कोई मतभेद नहीं है कि समय पड़ने पर व्यक्ति क़र्ज़ के लिए निवेदन कर सकता है, इसके कारण क़र्ज़ माँगनेवाले की मर्यादा या पद में कोई कमी नहीं आती। यदि इसमें कोई दोष होता तो अल्लाह के रसूल (सल्ल०) क़र्ज़ नहीं लेते। —नैलुल औतार 5/347

व्यवसायिक जीवन में क़र्ज़ का बड़ा महत्त्व है। इससे किसी कारोबार के प्रारंभ करने, उसे जारी रखने और कभी-कभी होनेवाली हानि को पूरा करने में सहायता मिलती है। वर्तमान युग में तो क़र्ज़ कारोबार का एक महत्त्वपूर्ण अंग बन गया है। वस्तुस्थिति यह है कि यदि क़र्ज़ (ऋण) का लेन-देन बन्द हो जाए तो बड़ी-बड़ी कारोबारी संस्थाएँ भी बन्द हो जाएँ, परन्तु आज का भौतिकता से प्रभावित ज़ेहन क़र्ज़ देने को भौतिक लाभ का उत्तम साधन समझता है। अतः बिना ब्याज के कोई किसी को क़र्ज़ देने के लिए तैयार नहीं होता, बल्कि ब्याज दर अधिक से अधिक रखना चाहता है। इसका एक तर्क यह दिया जाता है कि जब क़र्ज़ लेनेवाला क़र्ज़ से लाभ उठाता है तो क़र्ज़ देनेवाले को भी उसका एक हिस्सा मिलना चाहिए। यह बात उचित न होगी कि जिस व्यक्ति ने क़र्ज़ दिया है उसकी उपेक्षा करके उसके पैसे से अकेला क़र्ज़ लेनेवाला लाभ उठाता चला जाए।

दूसरे यह कि आज पूरी दुनिया में मुद्रा के मूल्य में गिरावट का आम रुझान है। इस समय बाज़ार में 100 रुपये का जो मूल्य है एक वर्ष के भीतर ही वह घटकर 80 या 90 रुपये रह जाएगा। अतः एक वर्ष के बाद 100 रुपये की वापसी का अर्थ मूलतः 80 या 90 रुपये की वापसी होती हैं। इसमें स्पष्ट रूप से क़र्ज़ देनेवाले को हानि पहुँचती है। इसी प्रकार के तर्कों की बुनियाद पर ब्याज को वैध बनाने का प्रमाण जुटाया जाता है।

इस्लाम इस भौतिकता से ग्रस्त ज़ेहन के विरुद्ध है। इस्लाम की दृष्टि में क़र्ज़ लाभ कमाने का साधन नहीं है, बल्कि उसके निकट यह एक प्रकार का एहसान है जो किसी ज़रूरतमन्द के साथ किया जाता है। इसका तक़ाज़ा यह है कि क़र्ज़दार से मुद्रा के मूल्य में निरन्तर होनेवाली गिरावट का हिसाब करके चक्रवृद्धि ब्याज वुसूल करने के बदले उसके साथ संभवतः नरमी बरती जाए। यदि वह अदायगी के लिए और अतिरिक्त समय माँगे तो उसे और अतिरिक्त मुहलत दी जाए और यदि वह आर्थिक कठिनाइयों के कारण क़र्ज़ अदा न कर सके तो उसे माफ़ भी कर दिया जाए। क़ुरआन में ब्याज के हराम (अवैध) होने की घोषणा के साथ क़र्ज़ के विषय में इसी उच्च नैतिक व्यवहार की शिक्षा दी गई है:

- "ऐ ईमान लानेवालो! अल्लाह का डर रखो और जो ब्याज बाक़ी रह गया है उसे छोड़ दो, यदि तुम वास्तव में ईमानवाले हो। यदि तुमने ऐसा न किया, तो अल्लाह और उसके रसूल की ओर से युद्ध के लिए सावधान हो जाओ। यदि 'तौबा' कर लो तो अपना मूलधन लेने का तुम्हें अधिकार है। न तुम किसी पर ज़ुल्म करो और न तुम्हारे साथ ज़ुल्म किया जाए। और यदि (क़र्ज़ लेनेवाला) तंगी में है, तो उसका हाथ खुलने तक उसे मुहलत दो; दान कर दो तो यह तुम्हारे लिए ज़्यादा अच्छा है, यदि तुम जानो। और उस दिन का डर रखो, जिसमें तुम अल्लाह की ओर लौटाए जाओगे। फिर ऐसा होगा कि प्रत्येक व्यक्ति को जो उसने कमाया है, पूरा-पूरा मिल जाएगा और उनपर तनिक ज़ुल्म न होगा।" —क़ुरआन, 2 : 278-281

हदीसों में एक ओर तो क़र्ज़दार को उत्तम तरीक़े से क़र्ज़ चुकाने का आदेश दिया गया है तथा दूसरी ओर क़र्ज़ देनेवाले को निर्देश दिया गया है कि वह क़र्ज़दार के साथ नरमी का व्यवहार करे।

- हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) की रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने एक व्यक्ति से ऊँट क़र्ज़ लिया था। वह आपसे बड़ी सख़्ती के साथ (कदाचित् वह यहूदी या बद्दू था) वापिस माँगने लगा। सहाबा (रज़ि०) ने उसका उसी प्रकार सख़्त उत्तर देना चाहा तो आपने फ़रमाया : "जाने दो, जिसका अधिकार है, वह कठोरता से

बोलने का भी अधिकार रखता है। एक ऊँट ख़रीदकर उसे दे दो।" सहाबा ने अर्ज़ किया : "इसने जिस उम्र का ऊँट दिया था वैसा तो नहीं है। हाँ, उससे अच्छा ऊँट मिल रहा है।" आप (सल्ल०) ने फ़रमाया : "वही ख़रीदकर दे दो। क्योंकि तुममें श्रेष्ठ वह व्यक्ति है जो अच्छे तरीक़े से अपना क़र्ज़ चुकाए।" —बुख़ारी, मुसलिम

अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने क़र्ज़दार के साथ नरमी का व्यवहार करने की श्रेष्ठता का उल्लेख इन शब्दों में किया है :

- "जिसने किसी निर्धन को मुहलत दी या क़र्ज़ माफ़ कर दिया, अल्लाह तआला उसे अपनी छाया में स्थान देगा।" —मुसलिम

हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) की रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया :

- "जिसने किसी निर्धन (तंगदस्त) को मुहलत दी या उसका क़र्ज़ माफ़ कर दिया तो अल्लाह तआला क़ियामत के दिन उसे अपने सिंहासन की छाया में स्थान देगा, जिस दिन उसकी छाया के अलावा अन्य कोई छाया न होगी।" —तिरमिज़ी

● एक अन्य हदीस में अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया कि एक व्यक्ति को अल्लाह ने दौलत दी थी। वह लोगों को क़र्ज़ दिया करता था, उसने अपने कर्मचारियों को निर्देश दे रखा था कि जो परेशानहाल और दुर्दशाग्रस्त हो तो क़र्ज़ वुसूल करने में उसे मुहलत दें और जो सम्पन्न है उससे अदायगी में कुछ कमी-ज़्यादती हो तो उसकी उपेक्षा करें। अल्लाह तआला ने उसके इस नेक अमल के कारण उसे जन्नत में दाख़िल कर दिया।" —बुख़ारी, मुसलिम

● एक बार एक क़र्ज़दार ने क़र्ज़ देनेवाले से रिआयत की माँग की। इसपर दोनों में वाद-विवाद होने लगा। क़र्ज़ देनेवाले ने क़सम खाकर कहा कि मैं किसी भी प्रकार की रिआयत नहीं करूँगा। आप (सल्ल०) अपने कमरे से बाहर आए और फ़रमाया : नेकी न करने की क़सम किसने खाई थी? उसने कहा : अल्लाह के रसूल! मैंने ही क़सम खाई थी (जो मेरी ग़लती थी), अब वह जो तरीक़ा पसन्द करे उसपर चलने का उसे अधिकार है। —बुख़ारी, मुसलिम

● इब्न अबी हदरद ने हज़रत क'अब बिन मालिक (रज़ि०) से क़र्ज़ लिया था, उन्होंने इसकी माँग की। वे लाचारी के कारण अदा नहीं कर पा रहे थे। जब बात बढ़ी तो अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने हज़रत क'अब को आवाज़ दी और इशारे से फ़रमाया कि 'आधा माफ़ कर दो और आधा ले लो।' अतः उन्होंने केवल आधा ही लिया और आधा माफ़ कर दिया। —बुख़ारी, मुसलिम

क़र्ज़ की रक़म डूब जाए या क़र्ज़दार उसे अदा न कर सके तो उसके मसले और आदेश अलग हैं। यहाँ उनपर विचार नहीं किया जा रहा है। यहाँ तो केवल यह बताना

अपेक्षित है कि किसी ज़रूरतमन्द को क़र्ज़ देना, उसके साथ सहयोग है। उसका मुआवज़ा खोजना इस्लामी शिक्षा के विरुद्ध है। क़र्ज़दार के साथ प्रेम एवं नरमी का व्यवहार अपनाना, उसकी कमज़ोरी से लाभ न उठाना, उसकी मजबूरियों की रिआयत करना और उसे संभावित सहूलतें उपलब्ध कराना, यह सब अच्छे व्यवहार और सेवा के अन्तर्गत आता है।

आवश्यक वस्तु तोहफ़े में देना

सेवा और अच्छे व्यवहार का एक रूप यह भी है कि किसी को उसकी आवश्यकता की कोई चीज़ तोहफ़े (हिबा) में दे दी जाए। 'लिसानुल अरब' नामक शब्दकोश में हिबा (तोहफ़ा) की परिभाषा इस प्रकार की गई है : "हिबा (तोहफ़े) उस अनुदान (उपहार) को कहते हैं जो किसी बदले अथवा स्वार्थ से ख़ाली हो।"

अल्लामा नसफ़ी कहते हैं : "हिबा यह है कि किसी वस्तु का स्वामी बना देना, उसके बदले में कुछ लिए बिना।" —कंज़ुद्दक़ाइक़, 308

इसका अर्थ यह है कि जो वस्तु हिबा की जाए, उसके बदले में कोई चीज़ न ली जाए और उससे कोई स्वार्थ भी जुड़ा हुआ न हो। बल्कि जो वस्तु हिबा की जाए वह केवल अल्लाह तआला की प्रसन्नता के लिए की जाए। हदीस में यहाँ तक है कि कोई व्यक्ति दान की हुई वस्तु को मूल्य देकर भी न ख़रीदे। हज़रत उमर (रज़ि०) फ़रमाते हैं कि मैंने एक अच्छा घोड़ा एक व्यक्ति को दान दिया जो जिहाद में जा रहा था, परन्तु वह व्यक्ति ग़रीब था। अतः वह घोड़े की देखभाल ठीक से न कर सका, अतः घोड़ा कमज़ोर होने लगा, मैंने सोचा कि शायद वह उसे बेच दे, तो मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से पूछा तो आपने फ़रमाया :

- "उसे न ख़रीदो चाहे वह तुम्हें एक दिरहम ही में क्यों न दे, क्योंकि जो व्यक्ति दान की हुई चीज़ को लौटाता है उसका उदाहरण ऐसा है जैसे कुत्ता क़ै (वमन) करके उसे फिर चाटने लगे।" —बुख़ारी, मुसलिम

यह बहुत गिरी हुई हरकत है कि व्यक्ति किसी को कोई चीज़ तोहफ़ा देकर फिर उसे वापिस ले। इससे मन में सहानुभूति एवं प्रेम की जो पवित्र भावनाएँ एक बार उत्पन्न हुई थीं उनको आघात पहुँचता है और माल की चाह अधिक तीव्रता के साथ उभर आती है। हिबा या सदक़ा की हुई वस्तु को वापिस लेने का अर्थ यह है कि व्यक्ति अपने द्वारा किए गए पिछले कर्म पर पछता रहा है अर्थात् जिसे उसने हिबा किया है उसे हानि पहुँचाना चाहता है। यदि व्यक्ति किसी के साथ सहानुभूति और प्रेम का प्रयत्न न करे तो शायद उसके आत्मसम्मान को इतनी क्षति न पहुँच सकती जितनी उसके द्वारा उठाए गए क़दम को वापस लौटाने से पहुँच सकती है। इसी लिए हिबा

की हुई वस्तु को ख़रीदने से रोका गया है कि इसमें इस बात की संभावना है कि हिबा करनेवाला अपने गत उपकार से लाभ उठाए और जिसे हिबा किया गया है वह भी अनिच्छापूर्वक ही सही उसके साथ रिआयत करने को बाध्य हो जाए।[1]

कोई चीज़ उधार देना

सेवा और सहयोग का एक रूप यह है कि किसी ज़रूरतमन्द को उधार कोई चीज़ दी जाए, ताकि वह उसे एक निर्धारित अवधि के भीतर फ़ायदा उठाने के बाद वापस लौटा दे। हदीस में इसे भी उत्तम सदक़ा और उपहार कहा गया है।

हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) की रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया :

- "उत्तम सदक़ा यह है कि किसी को उपकार-स्वरूप (कुछ दिन के लिए) अति उत्तम गाभिन ऊँटनी दी जाए (जो शीघ्र ही ख़ूब दूध देनेवाली हो) अथवा उत्तम बकरी दी जाए जो एक बरतन भरकर सुबह और एक बरतन भरकर शाम को दूध दे।" —बुख़ारी

मुसलिम की एक रिवायत इस प्रकार है :

- "जो व्यक्ति किसी घरवाले को ऊँटनी दे जो उसे सुबह एक बड़ा बरतन भरकर तथा शाम को एक बड़ा बरतन भरकर दूध दे तो उसका अज्र निस्संदेह बहुत बड़ा है।" —मुसलिम

हज़रत बराअ बिन आज़िब (रज़ि०) रिवायत करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया :

- "जो व्यक्ति कुछ दिनों के लिए किसी को दूध देनेवाला पशु या चाँदी (रुपया-पैसा क़र्ज़) दे या किसी को मार्ग दिखा दे तो उसका इतना सवाब होगा जितना एक ग़ुलाम आज़ाद करने का होता है।" —तिरमिज़ी

इमाम तिरमिज़ी ने लिखा है कि यहाँ चाँदी देने से अभिप्राय क़र्ज़ है।

—तिरमिज़ी

मूल अरबी में शब्द 'हदा ज़ुक़ाक़न' जो इस हदीस में प्रयोग हुआ है, का एक अर्थ तो

---

1. हनफ़ी फ़िक़ह (क़ानून) के अनुसार हिबा ली हुई वस्तु को लौटाने में यदि कुछ रुकावटें न हों तो हिबा करनेवाले को लौटाने का अधिकार है, परन्तु इसे नापसन्दीदा कहा गया है। (दुर्रे मुख़तार मअ रद्दुल मुहतार, 4/709 तथा इससे आगे) इमाम शाफ़ई, इमाम मालिक और इमाम औज़ाई के निकट इस हदीस का सम्बन्ध किसी अपरिचित को हिबा करने से है। यदि संतान या उसकी संतान—यह क्रम जहाँ तक भी चला जाए—को हिबा किया गया है तो उसे लौटाया भी जा सकता है। —नववी शरह मुसलिम 2/36

यही है कि 'उसने रास्ता दिखाया', और यही अर्थ शब्द के निकटतर है ।[1] परन्तु कुछ लोगों ने इसे 'हद्दा ज़ुक़ाक़न' भी रिवायत किया है । 'ज़ुक़ाक़' पतली गली और वृक्षों की पंक्ति को कहते हैं ।[2] इसका अर्थ यह है कि हदीस में उस व्यक्ति के अज्र (प्रतिदान) का उल्लेख किया गया है, जिसने अपने बाग़ में से वृक्षों की एक पंक्ति किसी को उपहार स्वरूप दे दी ।

इन हदीसों के दो-तीन पहलू महत्त्वपूर्ण तथा ध्यान देने योग्य हैं :

एक यह कि क़र्ज़ के तौर पर जो राशि दी जाती है अथवा अस्थायी रूप से लाभ उठाने के लिए जो पशु दिया जाता है उसे इन हदीसों में सदक़ा और उपहार कहा गया है । इसका कारण यह है कि यद्यपि ये चीज़ें एक निश्चित अवधि के बाद लौटा दी जाती हैं, परन्तु इनके द्वारा कठिन समय में इनसान की सहायता हो जाती है । इस दृष्टि से यह भी एक प्रकार का सदक़ा और एहसान है । अस्थायी सहायता भी कभी-कभी बहुत महत्त्वपूर्ण होती है । यहाँ इसी महत्त्व को स्पष्ट किया गया है ।

दूसरे यह कि यद्यपि हदीस में किसी निर्धन को जानवर के दूध से लाभ उठाने की अनुमति देने का सवाब बयान हुआ है परन्तु यही आदेश इस बात का भी है कि किसको पशु के बाल, ऊन, खाल तथा उसके बच्चे से फ़ायदा उठाने की अनुमति दी जाए ।[3]

तीसरे यह कि अरब के आर्थिक जीवन में दूधवाले जानवर का बड़ा महत्त्व था । अतः यहाँ इसका उल्लेख किया गया है । आज इसका स्थान कृषि के साज़ो सामान तथा औद्योगिक यंत्रों और मशीनों ने ले लिया है । उनका उधार देना भी इसी आदेश के तहत आएगा ।

एक ही प्रकार की दो चीज़ें देना

हदीस में इस बात की बड़ी श्रेष्ठता बयान हुई है कि व्यक्ति अल्लाह के मार्ग में जो चीज़ भी दे वह एक के बजाए दो दे । हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया :

- "जो व्यक्ति अल्लाह के मार्ग में कोई भी दो चीज़ें दे, उसे 'जन्नत' के दरवाज़ों में से पुकारा जाएगा कि ऐ अल्लाह के बन्दे ! यह है दूसरों की भलाई का काम (अर्थात तुमने नेकी का बहुत बड़ा काम अंजाम दिया) ।"

—बुख़ारी, मुसलिम

हज़रत अबू ज़र (रज़ि०) की एक रिवायत से हमें इसका विवरण मिलता है । कहते

---

1. इब्न मंज़ूर : लिसानुल अरब
2. इब्ने असीर : अननिहाया
3. फ़ीरोज़ाबादी : क़ामूस, इब्ने असीर : अन्निहाया 4/110

हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया—

- "जो मुसलमान बन्दा अपने हर माल में से एक जोड़ा अल्लाह के मार्ग में ख़र्च करेगा तो 'क़ियामत' के दिन 'जन्नत' के दरबान उसका हर ओर से स्वागत करेंगे। उनमें से हर एक उसे उन नेमतों की ओर आमंत्रित करेगा जो उसके पास होंगी। मैंने पूछा कि एक जोड़ा ख़र्च करने का क्या अर्थ है? फ़रमाया : (जैसे) अगर ऊँट हों तो दो ऊँट हों, गाएँ हों तो दो गाएँ हों!" —नसई

इन हदीसों का एक पहलू तो यह है कि इनमें 'इनफ़ाक़' (ख़र्च करने) की महत्ता का उल्लेख किया गया है और धनवानों को प्रेरणा दी गई है कि वे अल्लाह के मार्ग में अधिक से अधिक ख़र्च करें।

दूसरा पहलू यह है कि इनमें समाज के कमज़ोर वर्गों की ज़रूरतों को सामने रखा गया है और सम्पन्न व्यक्तियों को उन्हें पूरा करने की प्रेरणा दी गई है। कभी इनसान की आवश्यकताएँ इस बात की माँग करती हैं कि उसे एक ही प्रकार की दो चीज़ें दी जाएँ। जैसे हल जोतने, सिंचाई करने या सामान ढोनेवाली गाड़ी के लिए दो बैलों या दो भैंसों की आवश्यकता होती है, यह भी संभव है कि किसी के ख़र्चे ही इतने अधिक हों कि उसके लिए दूध देनेवाली एक गाय या भैंस काफ़ी न हो। स्पष्ट है कि जिसकी जितनी बड़ी आवश्यकता की पूर्ति की जाएगी उसका उतना ही बड़ा सवाब और प्रतिदान होगा। हदीस में अल्लाह के मार्ग में बजाए एक के दो गाएँ देने का 'सवाब' बताया गया है। इसे एक उदाहरण से समझना चाहिए। 'ज़ौजैन' अथवा 'जोड़ा' शब्द में बड़ी व्यापकता है अर्थात एक ही प्रकार की दो चीज़ें। इसमें रुपया, पैसा, कपड़ा और अन्य सामग्री व साज़ो सामान भी सम्मिलित हैं। इसमें कृषियंत्र और मशीनें भी शामिल हो सकती हैं।

कुछ लोगों ने 'अल्लाह की राह में' का अभिप्राय 'जिहाद' लिया है। परन्तु जैसा कि 'क़ाज़ी अयाज़' ने लिखा है और 'अधिक उचित बात यही है कि 'इन शब्दों में नेकी और सद्व्यवहार के समस्त कार्य सम्मिलित हैं।' —नववी : शरह मुसलिम 1/330

कारोबार में साझेदारी

कारोबार के लिए पूँजी एवं श्रम दोनों की आवश्यकता होती है। कभी-कभी व्यक्ति के पास पूँजी तो होती है परन्तु वह आवश्यक श्रम नहीं कर पाता है, कभी श्रम के योग्य तो होता है परन्तु उसके पास आवश्यक पूँजी नहीं होती। श्रम एवं पूँजी को एकत्र करने का एक तरीक़ा यह है कि पूँजीपति पूँजी उपलब्ध कराए और श्रम करनेवाला श्रम जुटाए, और लाभ में दोनों सम्मिलित हों। इस विधि को शरीअत में 'मुज़ारिबत' कहा जाता है। अल्लामा इब्न असीर ने मुज़ारिबत की परिभाषा इस प्रकार दी है :

"मुज़ारिबत यह है कि तुम किसी को पूँजी उपलब्ध कराओ ताकि वह व्यापार करे और उसमें उसका एक निर्धारित भाग हो।" —अन-निहाया 3/14

'हिदाया' में है कि 'एक पक्ष पूँजी तथा दूसरा पक्ष परिश्रम' की बुनियाद पर लाभ में भागीदारी को मुज़ारिबत कहा जाता है। इसकी आवश्यकता और शरई हैसियत के बारे में इस प्रकार विचार व्यक्त किया गया है कि 'मुज़ारिबत' सदा से वैध रही है क्योंकि लोग दो प्रकार के होते हैं। कुछ लोगों के पास पूँजी तो होती है परन्तु वे उचित ढंग से उसका उपयोग नहीं कर सकते। कुछ उसका उचित उपयोग तो जानते हैं परन्तु निर्धन होते हैं। अतः 'मुज़रिबात' की आवश्यकता पड़ती है ताकि नासमझ और समझदार, मुहताज और पूँजीपति दोनों प्रकार के लोगों की आवश्यकताएँ पूरी हों। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की नुबूवत के समय यह तरीक़ा प्रचलित था। आप (सल्ल०) ने इसे जारी रखा और सहाबा (रज़ि०) ने इसपर अमल किया। —हिदाया : 3/255

इस तरीक़े को सहाबा द्वारा अपनाने का प्रमाण हज़रत अब्दुल्लाह बिन हिशाम की रिवायत से मिलता है। वे कहते हैं कि बचपन में उनकी माँ उन्हें अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के पास ले गईं। आप (सल्ल०) ने उनके सिर पर प्रेमपूर्वक हाथ फेरा और बरकत की दुआ की। इसके प्रभाव से उन्हें कारोबार में बहुत लाभ हुआ। उनके पोते 'ज़हरह बिन माबद' कहते हैं कि मैं अपने दादा के साथ बाज़ार जाया करता था, वे ग़ल्ला ख़रीदते थे। हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर (रज़ि०) और हज़रत अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर (रज़ि०) उनसे मिलते और कहते कि इस कारोबार में हमें भी शरीक कर लो। कभी-कभी वे एक ऊँट के भार के बराबर लाभ का सामान प्राप्त करके घर को भेजते थे। —बुख़ारी

अल्लामा अबुल क़ासिम ख़र्क़ी कहते हैं कि कारोबार में साझेदारी की वैधता क़ुरआन, सुन्नत और इजमा (धर्मशास्त्रियों का मतैक्य) तीनों से सिद्ध है। अल्लामा इब्न क़ुदामा हंबली ने लिखा है कि साझेदारी की वैधता पर समस्त मुसलमानों का मतैक्य है, यदि मतभेद है तो केवल उसके कुछ प्रकारों के विषय में है। —अलमुग़नी 5/3

साझेदारी पूँजी में भी हो सकती है और श्रम में भी। दोनों ही का बड़ा महत्त्व है। वर्तमान युग में कारोबार इतना पेचीदा हो गया है कि व्यक्ति थोड़ी पूँजी से कोई बड़ा कारोबार नहीं कर सकता, जो लोग बड़ा कारोबार करना चाहते हैं वे अपनी पूँजी एकत्र करके कम्पनियाँ स्थापित करते हैं, उन्हीं कम्पनियों के द्वारा बड़े कारोबार होते हैं और पूँजी निवेश करनेवाले उनमें भागीदार और साझीदार समझे जाते हैं। जनसेवा का एक तरीक़ा यह भी है कि ऐसी कम्पनियाँ क़ायम हों, जिनमें कम पूँजीवाले भी सम्मिलित होकर उन्नति कर सकें।

वर्तमान युग में कला कौशल तथा औद्योगिक अनुभव ने असाधारण महत्त्व प्राप्त

कर लिया है। इसके बिना कोई कारख़ाना या फैक्ट्री नहीं चलाई जा सकती। बड़ी-बड़ी औद्योगिक संस्थाओं में तो विभिन्न प्रकार के कुशल विशेषज्ञों की आवश्यकता पड़ती है। कभी केवल पूँजी न होने के कारण इस प्रकार के विशेषज्ञ औद्योगिक क्षेत्र में आगे नहीं बढ़ पाते, उनके साथ सहयोग का एक उत्तम रूप यह है कि पूँजीपति अपने उद्योग में उन्हें भागीदार बनाएँ और साझेदारी की बुनियाद पर उनका सहयोग प्राप्त करें, परन्तु आज की पूँजीवादी बुद्धि किसी को कर्मचारी तो रख सकती है, कारोबार में साझी नहीं कर सकती।

खेती-बाड़ी में साझेदार बनाना

कृषि और खेती-बाड़ी में भी साझा हो सकता है। वर्तमान युग में बड़े-बड़े फ़ारमों के वुजूद में आने, कृषि की विधि में परिवर्तन आ जाने और मशीनों व यंत्रों के अमल-दख़ल के कारण इसका महत्त्व बढ़ गया है। हदीसों में बटाई पर खेती करने का प्रमाण मिलता है। इसका तरीक़ा यह है कि एक व्यक्ति की ज़मीन पर दूसरा व्यक्ति खेती करे, बाग़ हो तो उसकी देखभाल और आवश्यकताओं का प्रबन्ध करे और जो आमदनी हो वह निर्धारित शर्तों के अनुसार दोनों के बीच बाँट दी जाए।

हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) की रिवायत है कि हिजरत के बाद मदीना के अनसार ने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से निवेदन किया कि आप हमारे खजूर के बाग़ों को हमारे और मुहाजिरों के बीच बाँट दीजिए। आप (सल्ल०) ने फ़रमाया : ऐसा नहीं होगा, तब अनसार ने कहा कि मुहाजिर इन बाग़ों की देखभाल और सिंचाई का प्रबन्ध करेंगे और जो फ़सल आए वह हमारे और उनके बीच बँट जाए। मुहाजिरों ने इसे मान लिया।

—बुख़ारी

हज़रत अबू जाफ़र बाक़र (रह०) फ़रमाते हैं कि मदीना के समस्त मुहाजिर परिवार एक तिहाई, चौथाई (जैसा तय हो) के साझे पर खेती करते थे। (सहाबा में) हज़रत अली (रज़ि०), हज़रत सअद (रज़ि०), हज़रत अब्दुल्लाह बिन मसऊद (रज़ि०), (ताबिईन में) उमर बिन अब्दुल अज़ीज़, क़ासिम बिन मुहम्मद, उर्वा बिन ज़ुबैर तथा हज़रत अबू बक्र (रज़ि०), हज़रत उमर (रज़ि०) और हज़रत अली (रज़ि०) के परिवारजनों और इब्न सीरीन ने इसपर अमल किया है।

अब्दुर्रहमान बिन असवद कहते हैं कि मैं अब्दुर्रहमान बिन यज़ीद के साथ खेती में साझीदार रहा करता था। हज़रत उमर (रज़ि०) बाग़ों और ज़मीन को बँटाई पर इस शर्त के साथ देते थे कि यदि बीज आदि उनके ज़िम्मे हो तो पैदावार का आधा उनका होगा, परन्तु यदि किसान खेती का सामान हल और बीज आदि उपलब्ध कराएँ तो वे दो तिहाई के और हज़रत उमर (रज़ि०) एक तिहाई के हक़दार होंगे।

हज़रत हसन बसरी (रह०) कहते हैं कि इसमें भी कोई हरज नहीं है कि ज़मींदार और किसान दोनों मिलकर ख़र्च करें और जो आय हो वह निश्चित शर्तों के अनुसार बाँट दी जाए। इमाम ज़ुहरी का मत भी यही है।

हसन बसरी (रह०) कहते हैं कि इस शर्त पर कपास चुनी जा सकती है कि परिश्रम करनेवाला (उदाहरणार्थ) आधे का मालिक होगा। इब्न सीरीन, अता, हकम, ज़ुहरी और क़तादा कहते हैं कि इसमें कोई हरज नहीं कि बुनकर को सूत इस शर्त पर उपलब्ध कराया जाए कि तैयार कपड़े का एक तिहाई या चौथाई उसे मिलेगा।

'मामर' कहते हैं कि पशु एक निश्चित अवधि के लिए इस शर्त पर दिए जा सकते हैं कि जो आय होगी उसका तिहाई या चौथाई मालिक को मिलेगा।[1]

इस व्याख्या से अनुमान लगाया जा सकता है कि इस्लाम ने एक ऐसा वातावरण बनाया था जिसमें साधनों, योग्यताओं और शक्ति से सामान्य रूप से लाभ उठाया जाता था। हमारे समाज की ख़राबी यह है कि जो साधन मौजूद हैं उनका उचित उपयोग नहीं हो पाता और जो योग्यताएँ पाई जाती हैं वे भी ठप पड़ी रहती हैं। जिस समाज में साधनों और श्रम व योग्यताओं के तालमेल से भरपूर लाभ उठाया जाए उसकी समृद्धि में आनेवाली बाधाएँ दूर होती चली जाती हैं और वह उन्नति की ओर अग्रसर रहता है।

मशविरा देना

इनसान क़दम-क़दम पर अच्छे मशविरे का मुहताज होता है। शिक्षा, कला-कौशल, व्यापार, कृषि, यात्रा, रोग व स्वास्थ्य अर्थात जीवन के बहुत-से मामलों में उसे परामर्श की आवश्यकता पड़ती है। आधुनिक क़ानूनों और नियमों ने हर मामले में इतनी जटिलताएँ उत्पन्न कर दी हैं कि व्यक्ति उसके समस्त पहलुओं से यथोचित परिचित नहीं हो पाता। कभी सही परामर्श न मिल पाने के कारण बड़ी हानि तथा कष्ट झेलने पड़ते हैं। इसी कारण आजकल विभिन्न समस्याओं के बारे में सलाह देने के लिए बड़ी-बड़ी संस्थाएँ स्थापित की गई हैं। हदीस में किसी को ठीक समय पर और उचित सलाह देने की श्रेष्ठता बताई गई है। एक हदीस में है :

- "जिसने किसी भलाई की ओर मार्गदर्शन किया तो उसे उसपर अमल करनेवाले के आधे अज्र के बराबर अज्र (प्रतिदान) मिलेगा।" —मुसलिम

---

1. बुख़ारी; विस्तृत जानकारी के लिए देखा जाए 'फ़तहुल बारी' 5/977। भूमि के बारे में साझेदारी इमाम अबू हनीफ़ा के निकट उचित नहीं है परन्तु साहिबैन (इमाम यूसुफ़ और इमाम मुहम्मद) ने इसे जाइज़ ठहराया है। फ़िक़्ह हनफ़ी का फ़तवा साहिबैन ही के मतानुसार है। (हिदाया, 3/422-423)। अन्य इमामों ने कुछ आंशिक मतभेदों के बावजूद इसे जाइज़ ठहराया है। यहाँ विस्तारपूर्वक बहस नहीं की गई है।

इसी प्रकार जानते-बूझते ग़लत सलाह देने को ख़ियानत कहा गया है। हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) की रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया :

- "जिस व्यक्ति को बिना ज्ञान के 'फ़तवा' (आदेश) दिया गया (और उसने उसे मानकर अमल किया) तो गुनाह फ़तवा देनेवाले पर होगा। जिसने अपने भाई को यह जानते हुए सलाह दी कि उसका फ़ायदा और भलाई दूसरी बात में है तो उसने उसके साथ ख़ियानत (धोखा) की।" —अबू दाऊद

वर्तमान सभ्यता ने जो समस्याएँ उत्पन्न कर दी हैं वे बड़ी जटिल हैं। हमारे यहाँ ऐसी संस्थाएँ होनी चाहिएँ जो उनके विषय में उचित मार्गदर्शन करें और आधुनिक उपकरणों और साधनों से लाभान्वित होने के उपाय बताएँ और इस विषय में इस्लामी दृष्टिकोण स्पष्ट करें।

पीड़ित की सहायता करना

जनसेवा का एक रूप यह भी है कि समाज में जिन व्यक्तियों और वर्णों पर अत्याचार हो रहा हो उनकी सहायता की जाए। इस्लाम हर प्रकार के अत्याचार और अन्याय के विरुद्ध है। वह एक ओर तो अत्याचार करने से सख़्ती से रोकता है तथा दूसरी ओर इस बात का निर्देश देता है कि यदि किसी पर अत्याचार हो तो उसे समाज चुपचाप सहन न करे, बल्कि अत्याचारी के विरुद्ध आवाज़ उठाए, उसे अत्याचार करने से रोके, उत्पीड़ित को उसके अत्याचार से बचाए और उसकी हर संभव सहायता करे।[1] हज़रत 'बराअ बिन आज़िब' (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने हमें सात बातों का आदेश दिया, उनमें से एक बात यह थी कि उत्पीड़ित की सहायता की जाए। —बुख़ारी, मुसलिम

इमाम नववी (रह०) ने उत्पीड़ित की सहायता करने को फ़र्ज़ किफ़ाया (यानी वह फ़र्ज़ जो सबके ऊपर लागू होता है परन्तु कुछ लोगों के अदा करने से सबका दायित्व पूरा हो जाता है) ठहराया है और इसकी गणना 'नेकी का हुक्म देने और बदी से रोकने' में की है।[2]

इसका अर्थ यह है कि यदि किसी की जान व माल पर ज़्यादती हो, उसके मान-

---

1. अतिरिक्त जानकारी के लिए देखें लेखक का उर्दू लेख 'इस्लाम कमज़ोर की हिफ़ाज़त करता है।' त्रैमासिक तहक़ीक़ाते इस्लामी (अलीगढ़), अंक-2, अप्रैल-जून 1986
2. शरह मुसलिम 2/188, 'उत्पीड़ित की सहायता किन परिस्थितियों में फ़र्ज़ हो जाती है और किन परिस्थितियों में फ़र्ज़ नहीं रहती है।' 'केवल इसकी वैधता शेष रहती है अथवा पीड़ित की सहायता कब और किस समय होनी चाहिए' इसकी विस्तृत जानकारी के लिए देखें—फ़त्हुल बारी 5/61

सम्मान पर आक्रमण हो, उसका घर लूटा जा रहा हो, या उसकी जायदाद जलाई और फूँकी जा रही हो तो आस-पास के लोगों का दायित्व और फ़र्ज़ है कि उसकी सहायता के लिए दौड़ पड़ें। यदि कुछ लोगों का भरपूर सहयोग मिल जाए तो यह फ़र्ज़ सबके ऊपर से उतर जाएगा, परन्तु यदि किसी ने भी उसकी सहायता न की तो सब के सब गुनहगार और पापी होंगे।

पीड़ित या मज़लूम की सहायता के अनेक तरीक़े हो सकते हैं। क़ानूनी भी और नैतिक भी, आर्थिक दशा का सुधारना भी इसमें शामिल है और मानसिक रूप से उसे यह विश्वास दिलाना भी इसी में आता है कि वह समाज में अकेला नहीं है। उसपर अत्याचार हो तो उसे रोकने का प्रयत्न किया जाएगा और उसकी कठिनाइयों में उसका साथ दिया जाएगा। जिस समाज में पीड़ित की सेवा और सहायता का इतना संकल्प और साहस हो वह भय और बर्बरता से बाहर होगा और उसमें कमज़ोर से कमज़ोर इनसान भी लाचारी का जीवन व्यतीत करने पर बाध्य न होगा।

जनकल्याण सम्बन्धी सेवाएँ

एक व्यक्ति अपनी जिन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए दूसरों का मुहताज होता है, उसी प्रकार की आवश्यकताएँ समाज के अन्य बहुत-से व्यक्तियों की भी हो सकती हैं। जनकल्याण के काम इन सबकी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ही किए जाते हैं। ये दो प्रकार के होते हैं। कुछ सेवाएँ तो वे हैं जिनसे समाज की सामान्य आवश्यकताएँ पूरी होती हैं, उनका लाभ पूरी आबादी या उसके बड़े भाग को प्रत्यक्ष रूप से पहुँचता है। कुछ सेवाएँ वे हैं जो समाज की विशिष्ट आवश्यकताएँ पूरी करती हैं, परन्तु कुल मिलाकर इनसे भी पूरे समाज को लाभ होता है। इस्लाम ने दोनों प्रकार की सेवाओं की ओर ध्यान आकृष्ट कराया है।

जनकल्याण के काम व्यक्ति भी करते हैं और संस्थाएँ भी। बहुत-सी सेवाएँ कल्याणकारी राज्य के दायित्वों में सम्मिलित हैं। वह अपने साधनों का अधिकांश भाग उनपर ख़र्च करता है। यहाँ यह बताना ज़रूरी नहीं है कि उनकी सीमाएँ क्या हैं, एक का कार्यक्षेत्र कहाँ समाप्त होता है और कहाँ से दूसरे का शुरू होता है? स्पष्ट है कि साधनों के अनुपात में उनका क्षेत्र घटता और बढ़ता चला जाएगा। इन सबके बीच सहयोग एवं योगदान भी हो सकता है और होना ही चाहिए। इससे उत्तम और हितकारी परिणामों की आशा की जा सकती है।

इस्लाम अपने समस्त आदेशों में मूलतः व्यक्ति ही को सम्बोधित करता है। इसका कारण यह है कि संस्थाएँ हों अथवा राज्य, सबकी बुनियाद व्यक्ति ही है। वही उनके ढाँचे की रचना करता और उनके स्वभाव को बनाता है। इस विषय में भी उसने सर्वप्रथम व्यक्ति को सम्बोधित किया है।

पवित्रता एवं स्वच्छता की शिक्षा एवं व्यवस्था

हितकारी सेवाओं में से एक सेवा यह भी है कि लोगों में पाकी-सफ़ाई (पवित्रता एवं स्वच्छता) की चेतना जागृत की जाए, उसकी आवश्यकता तथा महत्त्व ज़ेहन में बिठाया जाए, गन्दगी और मलिनता की हानि स्पष्ट की जाए और उससे घृणा उत्पन्न कराई जाए। छोटी या बड़ी आबादियों में सफ़ाई की निगरानी की जाए, इस मामले से सम्बन्धित समस्याओं का समाधान किया जाए और इस बात का प्रयास किया जाए कि लोग गंदगी में रहने को बाध्य न हों। इन सब बातों को पश्चिम की देन समझा जाता है। हालाँकि इस सिलसिले में इस्लाम ने आदर्श भूमिका निभाई है। वह गंदगी से घृणा और स्वच्छता से लगाव की भावना को उभारता है। इसके लिए शिक्षण-प्रशिक्षण, प्रेरणा तथा उत्साहवर्धन से काम लेता है। वह पवित्रता एवं स्वच्छता का उत्कृष्ट विचार

देता है और उसके अनुसार समूचे समाज को तैयार करता है।[1]

मार्ग से कष्ट दूर करना

किसी देश की आर्थिक एवं भौतिक उन्नति में यातायात के साधनों की बड़ी भूमिका होती है। जहाँ मार्ग साफ़-सुथरे और सुरक्षित हों, यात्रा की कठिनाइयाँ कम से कम हों और सहूलतें व सुगमता अधिक से अधिक पाई जाएँ, वहाँ उन्नति एवं प्रगति के अवसर भी उसी अनुपात में बढ़ते चले जाते हैं। इसी उद्देश्य से सड़कों और पुलों का निर्माण होता है, ख़तरनाक मार्गों को यात्रा के योग्य बनाया जाता है, मार्ग-चिह्न लगाए जाते हैं, ट्रैफ़िक (यातायात) के नियम बनाए जाते हैं, यात्रा को दुर्घटनाओं से सुरक्षित रखने का प्रयत्न किया जाता है और यात्रियों को सुविधा एवं आराम पहुँचाया जाता है। आधुनिक युग ने अंतरिक्ष यात्रा के मार्ग खोल दिए हैं। इसकी अपनी ख़ास समस्याएँ हैं जिनके समाधान के प्रयत्न भी निरन्तर हो रहे हैं।

मार्ग की बड़ी-बड़ी कठिनाइयों और रुकावटों को दूर करना और यात्रा को सरल व सुगम बनाना, वास्तव में राज्य का एक बुनियादी दायित्व है। संसार का प्रत्येक कल्याणकारी राज्य इस दायित्व को स्वीकार करता है, परन्तु इसमें व्यक्तियों का सहयोग अत्यावश्यक है। जहाँ व्यक्ति जागरूक और प्रशिक्षित हों, उनके मन में अल्लाह का डर तथा इनसानों की भलाई और सहानुभूति की भावना हो, वहाँ यह काम सरल होता है। अन्यथा अनेक उपायों के बावजूद यात्रा कठिनाइयों से सुरक्षित नहीं हो सकती। क़दम-क़दम पर कष्ट तथा रुकावटों का सामना करना पड़ सकता है। कभी यात्री भयंकर दुर्घटना का शिकार भी हो सकता है। इन सब बातों के अनुभव रात-दिन होते रहते हैं।

इस प्रकार की हितकारी सेवाओं के दायित्व का भार इस्लाम के निकट भी राज्य पर ही होता है, परन्तु उसने इस मामले में व्यक्ति को भी सम्मिलित किया है और उसकी भूमिका के महत्त्व को भी स्पष्ट किया है। उसने व्यक्ति को जिन जनहित सम्बन्धी सेवाओं की स्पष्ट शब्दों में शिक्षा दी है उनमें से एक यह है कि वह मार्ग को साफ़ और सुगम रखे और उनपर जो रुकावटें एवं बाधाएँ हों उन्हें दूर करे। इस विषय की कुछ रिवायतें यहाँ प्रस्तुत की जा रही हैं। हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया :

- "ईमान की सत्तर से अधिक या साठ से अधिक शाखाएँ हैं। उनमें सबसे श्रेष्ठ और ऊँची शाखा 'ला इला-ह इल्लल्लाह' (अल्लाह के अलावा कोई पूज्य नहीं) का कथन है और सबसे छोटी शाखा रास्ते से कष्ट को दूर करना

---

1. इसके सविस्तार विवरण के लिए देखें लेखक का लेख : 'इस्लाम और तहारत व नज़ाफ़त'— सेहमाही तहक़ीक़ाते इस्लामी अलीगढ़, अक्टूबर-दिसम्बर 1988

है। लज्जा (हया) भी ईमान ही की एक शाखा है।"[1] —मुसलिम

अल्लाह पर ईमान से व्यक्ति के अन्दर उसके बन्दों को राहत पहुँचाने की भावना जागृत और विकसित होती है। यदि ईमान सही तौर पर दिल में मौजूद हो तो व्यक्ति का प्रयत्न होगा कि उसके द्वारा दूसरों को अधिक से अधिक लाभ पहुँचे। इसी का एक छोटा-सा पहलू हदीस में बयान हुआ है। कोई भी ईमानवाला व्यक्ति रास्ते में पत्थर, काँटें, कूड़ा-करकट और गन्दगी जैसी चीज़ें जिनसे जनता को कष्ट पहुँचता है, सहन नहीं करेगा बल्कि वह उन्हें हटा देगा।

हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया :

- "मैंने जन्नत में एक व्यक्ति को चलते-फिरते देखा (जिस का प्रमुख अमल यह था कि) उसने रास्ते में मौजूद एक ऐसा पेड़ काट दिया था जो लोगों को कष्ट दे रहा था।" —मुसलिम

अभिप्राय यह कि उसने लोगों के रास्ते से एक कष्ट (देनेवाली वस्तु) को दूर किया तो उसके लिए जन्नत (स्वर्ग) की राह सरल हो गई और उसके लिए किसी बाधा के बिना जन्नत के बाग़ों में घूमना संभव हो गया।

हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया :

- "एक व्यक्ति ने राह चलते हुए (रास्ते में आई) एक काँटेदार झाड़ी देखी। उसने उसे वहाँ से हटा दिया। अल्लाह ने उसके इस कर्म को पसंद किया और उसको बख़्श दिया।" —मुसलिम, बुख़ारी

---

1. बुख़ारी में बिना सन्देह के कहा गया है : "ईमान की साठ से अधिक शाखाएँ हैं।" मुसलिम की एक और रिवायत में बिना सन्देह के कहा गया है : "ईमान की सत्तर से अधिक शाखाएँ हैं।" यह रिवायत अबू दाऊद और तिरमिज़ी आदि में भी है। हदीस के कुछ टीकाकारों के निकट इमाम बुख़ारी की रिवायत प्रधानता देने योग्य है। क्योंकि साठ से अधिक संख्या पर सभी रिवायतें सहमत हैं, परन्तु कुछ अन्य टीकाकारों ने सत्तर से अधिक की रिवायत को प्रधानता दी है क्योंकि इसमें जो वृद्धि है वह विश्वसनीय रावियों (उल्लेखकर्ताओं) की ओर से है। उनकी ओर से की जानेवाली कोई वृद्धि सदैव स्वीकार की जाती है।

(देखें नववी : शरह मुसलिम 1/47)

हदीस में ईमान की 60 या 70 से अधिक शाखाएँ बयान की गई हैं। इनको एकत्र करने के प्रयत्न भी हुए हैं। इसका सारांश हाफ़िज़ इब्न हजर (रह०) ने बयान किया है। (फ़त्हुल बारी 1/40-41) शायद हदीस का अभिप्राय यह है कि दीन की विस्तृत बातों को 60, 70 से अधिक शीर्षकों के तहत बयान किया जा सकता है। यहाँ उच्चतम और निम्नतम दर्जे का उल्लेख कर दिया गया है। इस विषय पर इमाम बैहक़ी की 'शोबुल ईमान' सबसे विस्तृत पुस्तक है।

एक अन्य हदीस में इस प्रकार है :

- "एक व्यक्ति एक रास्ते से जा रहा था कि उसने रास्ते के बीच में वृक्ष की एक बड़ी शाखा देखी। उसने मन में सोचा कि ख़ुदा की क़सम ! मैं इसे मुसलमानों के रास्ते से हटा दूँगा ताकि यह उन्हें कष्ट न दे। अत: अल्लाह ने उसे जन्नत में पहुँचा दिया।" —मुसलिम

ऊपर की हदीस में उस व्यक्ति को जन्नत का हक़दार ठहराया था जिसने एक काँटेदार झाड़ी को काट दिया था जिससे रास्ते में लोगों को कष्ट हो रहा था। परन्तु इस हदीस में रास्ते से केवल एक शाखा के हटाने पर उसकी शुभसूचना दी गई है। इसका अर्थ यह है कि लोगों के रास्ते से छोटे से छोटा कष्ट दूर करना और उनको साधारण से साधारण लाभ पहुँचाना भी इनसान को जन्नत जैसी शाश्वत नेमत का हक़दार बना देता है।

हज़रत अबू बरज़ा असलमी (रज़ि०) ने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से निवेदन किया :

- "आप मुझे कोई ऐसी बात बता दीजिए जिससे फ़ायदा उठा सकूँ। आपने फ़रमाया : मुसलमानों के रास्ते से कष्ट दूर कर दो।" —मुसलिम, इब्न माजा

यद्यपि इन हदीसों में केवल रास्ते का कष्ट दूर करने का उल्लेख है, परन्तु जैसाकि इमाम नववी ने लिखा है "इनमें मुसलमानों को लाभ पहुँचाने और उनकी हानि को दूर करनेवाले प्रत्येक कर्म की श्रेष्ठता को चिह्नित किया गया है।"

—शरह मुसलिम 2/328 भारत में प्रकाशित

यहाँ यह बात भी सामने रहनी चाहिए कि ये हिदायतें मुसलिम समाज को सामने रखकर दी गई हैं, अत: इनमें मुसलमानों के रास्ते से कष्ट (या कष्टदायक चीज़) दूर करने का उल्लेख है। अन्यथा यह एक आम आदेश है। किसी भी इनसान के रास्ते से कष्ट का दूर करना नेकी और सवाब का काम है। अत: इन्हीं रिवायतों में से कुछ में 'अन्नास' (यानी आम लोग) का शब्द प्रयुक्त हुआ है[1] जो जनसाधारण के लिए है।

- "हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से उद्धृत करते हैं : कोई व्यक्ति मार्ग से कष्ट दूर करता है, तो यह भी एक सदक़ा है।" —बुख़ारी

रास्ते से कष्ट दूर करने का जो प्रतिदान (सवाब) बयान हुआ है, इस हदीस से इसका स्पष्टीकरण होता है। सदक़े या दान का उद्देश्य विपत्ति में किसी की सहायता करना और उसे राहत व आराम पहुँचाना है। रास्ते से कष्ट दूर करने का उद्देश्य भी यही है कि राही को कष्ट न पहुँचे और वह सकुशल एवं सरलतापूर्वक रास्ते तय कर

---

1. मुसलिम : अबू बरज़ा असलमी की रिवायत इस प्रकार भी है, "लोगों के रास्ते से कष्ट दूर कर दो।" अल-अदबुल मुफ़रद 1/324

ले। इस विचार से यह एक सदक़ा या दान है। —फ़तहुल बारी 5/70

रास्ते की कष्ट और बाधाएँ हर प्रकार की होती हैं। उनको दूर करना और राह चलना आसान बनाना एक दीनी और धार्मिक काम है और मुसलमान इसपर उत्कृष्ट अज्र व प्रतिदान की आशा कर सकता है।

सराय एवं होटल का निर्माण करना

इसी से मिलती-जुलती सेवा होटलों और सरायों (मुसाफ़िरख़ानों) का निर्माण है, जहाँ यात्रियों को उचित सहूलतें प्राप्त हों और वतन से दूर होने के कारण उन्हें कष्टों का सामना न करना पड़े। हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) की एक रिवायत से इसका अज्र और सवाब तथा श्रेष्ठता स्पष्ट होती है। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया :

- "मोमिन की मृत्यु के बाद भी जिन कर्मों और नेकियों का सवाब उसे पहुँचता रहता है उनमें ये चीज़ें भी सम्मिलित हैं; वह ज्ञान जो उसने सिखाया और फैलाया, नेक संतान जो उसने छोड़ी (क्योंकि उनको नेकी के मार्ग पर डालने में उसकी कोशिशों का दख़ल था), क़ुरआन शरीफ़ जिसका उसने अपने बाद किसी को वारिस बनाया, या जो मसजिद उसने बनवाई या मुसाफ़िरों के लिए कोई मकान जिसका उसने निर्माण कराया या नहर जो उसने खुदवाई या वह सदक़ा जो उसने अपने माल से स्वस्थ दशा में अपने जीवनकाल में निकाला। इसका प्रतिदान उसे मरने के बाद भी मिलेगा।" —इब्न माजा, बैहक़ी

इस हदीस में जनहित के कुछ विशेष कर्मों का उल्लेख है और उन्हें सदक़ए जारिया (अनवरत दान) कहा गया है। इनमें यात्रियों के लिए मकान और सराय का निर्माण भी है। एक हदीस से मालूम होता है कि इस प्रकार के कामों में धन ख़र्च करना उत्तम सदक़ा है। हज़रत अबू उमामा (रज़ि०) रिवायत करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया :

- "सदक़ों में उत्तम सदक़ा (दान) यह है कि अल्लाह की राह में शिविर (ख़ेमे) की छाया उपलब्ध कराई जाए।" —तिरमिज़ी, मुसनद अहमद 5/270

इस हदीस में मुजाहिदों के लिए तंबुओं और छोलदारियों की व्यवस्था करने का सवाब बयान हुआ है, परन्तु इसके तहत शिक्षण-प्रशिक्षण, धर्म के प्रचार-प्रसार तथा हज व उमरा जैसे धार्मिक उद्देश्यों के लिए केन्द्र स्थापित करना और भवन निर्माण कराना भी आ सकता है।

पानी की व्यवस्था

पानी जीवन की मूल आवश्यकता है। आधुनिक प्रगतिशील युग में भी साफ़ और

स्वच्छ पानी की उपलब्धि एक बड़ी समस्या है। इस्लाम ने इसकी ओर जिस प्रकार ध्यान आकर्षित कराया है उसका अनुमान ऊपर की इस रिवायत से लगाया जा सकता है, जिसमें अल्लाह के बन्दों के लिए नहर के निर्माण को 'सदक़ए जारिया' (अनवरत दान) कहा गया है।

हज़रत सअद बिन उबादा (रज़ि०) की माँ का देहान्त हुआ तो उन्होंने चाहा कि उनकी ओर से दान-पुण्य करें। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से पूछा कि कौन-सा सदक़ा सबसे अच्छा है ? आपने फ़रमाया : कुआँ खुदवा दो। तो उन्होंने अपनी माँ के नाम से कुआँ खुदवा दिया। —अबू दाऊद

नहर और कुआँ खुदवाना पानी उपलब्ध कराने का एक तरीक़ा है जो प्राचीन काल से प्रचलित है। वर्तमान युग में ट्यूबवेल तथा नल लगाए जाते हैं। हौज़ और टैंक में पानी भरकर वितरित करना भी इसका एक तरीक़ा है। इस प्रकार इसमें पानी उपलब्ध कराने की समस्त योजनाएँ आ सकती हैं और वे सब प्रतिदान की हक़दार हैं।

ज़मीन को आबाद करना

बंजर भूमि को जोतना, बोना तथा कृषि योग्य बनाना और इसमें सहायता देना भी कल्याणकारी और हितकारी सेवा है। इससे सामूहिक रूप से समस्त क़ौम और पूरे देश को लाभ होता है। सरकार स्वयं भी बंजर भूमि को उपजाऊ बनाकर उसकी आय कल्याण-कार्यों में लगा सकती है। ऐसा भी हो सकता है कि जो लोग उन ज़मीनों को आबाद करना चाहें उन्हें अनुमति दी जाए और उन्हें सहूलतें उपलब्ध कराई जाएँ। इस्लाम ने इस बात की प्रेरणा दी है और इसे नेकी का काम बताया है कि बंजर और बेकार पड़ी हुई ज़मीनों को कृषि योग्य बनाया जाए। हज़रत जाबिर (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया :

- "जिसने किसी निर्जीव भूमि को जीवन प्रदान किया उसे इसका अज्र (प्रतिदान) मिलेगा, उससे ज़रूरतमन्द (इनसान, पशु, पक्षी आदि) जो कुछ खाएँगे वह सब उसकी ओर से सदक़ा है।" —मुसनद अहमद 3/327

किसी बेकार पड़ी हुई ज़मीन को जो व्यक्ति अपने परिश्रम से उपजाऊ बनाए तो उसका लाभ मूलतः उसे और उसके परिवार को पहुँचता है, क्योंकि यह परिश्रम एक जाइज़ उद्देश्य के लिए किया जाता है। अतः वह अज्र और सवाब का अधिकारी है। इसी के साथ यह भी बता दिया कि इससे कोई जीवधारी जो भी फ़ायदा उठाता है वह उसकी ओर से सदक़ा है। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि इस परिश्रम से इनसानों और पूरे समाज को जो लाभ पहुँचेगा उसका कितना बड़ा अज्र होगा !

वर्तमान कल्याणकारी राज्य बेकार पड़ी हुई ज़मीनों को खेती के योग्य बनाने में

सहूलतें देते हैं। इस्लाम ने इससे आगे बढ़कर और डेढ़ हज़ार वर्ष पूर्व ही यह प्रयास किया कि जो व्यक्ति इस प्रकार की ज़मीन को कृषि योग्य बनाए उसे उस भूमि पर स्वामित्व के अधिकार दे दिए जाएँ। हज़रत जाबिर बिन अब्दुल्लाह (रज़ि०) रिवायत करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया :

- "जिसने किसी निर्जीव ज़मीन को जीवन प्रदान किया वह उसी की है।"

—तिरमिज़ी

यही बात हज़रत उमर ने भी फ़रमाई है। —मुवत्ता, बुख़ारी

इस विषय में निम्नलिखित निर्देश दिए गए हैं ताकि व्यक्ति के अधिकारों और समाज के हितों को क्षति न पहुँचे :

(1) किसी अन्य व्यक्ति की ज़मीन को बेकार पड़ी हुई ठहराकर उसपर अधिकार नहीं जमाया जाएगा। हज़रत आइशा (रज़ि०) ने रिवायत की है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया :

- "जिसने किसी ऐसी ज़मीन को कृषि योग्य बनाया या आबाद किया, जिसका कोई मालिक नहीं है तो वही उसका ज़्यादा अधिकारी है।" —बुख़ारी

इससे ज्ञात हुआ कि किसी ज़मीन को आबाद करने से उसपर व्यक्ति का अधिकार उसी समय माना जाएगा जबकि वह किसी अन्य के स्वामित्व में न हो। हज़रत सईद बिन ज़ैद (रज़ि०) की रिवायत अधिक स्पष्ट है। वह अल्लाह के रसूल (सल्ल०) का यह कथन उद्धृत करते हैं :

- "जिसने किसी निर्जीव भूमि को जीवन प्रदान किया वह उसी की है, परन्तु निष्ठुर प्रयास (अत्याचार से की हुई खेती) का कोई अधिकार नहीं है।"

—अबू दाऊद, तिरमिज़ी

अर्थात बंजर भूमि और ग़ैरआबाद ज़मीन को उपजाऊ बनानेवाला और आबाद करनेवाला ही उसका स्वामी होगा, परन्तु किसी बहाने से दूसरे की भूमि पर क़बज़ा करना और उसमें खेती शुरू कर देना नाजाइज़ व अवैध है। यह खुला हुआ अन्याय है और अन्याय की किसी भी दशा में अनुमति नहीं है। उपरोक्त हदीस के तहत बताया गया है कि एक व्यक्ति ने दूसरे की ज़मीन में खजूर के पेड़ लगवा लिए थे। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के सामने मुक़द्दमा पेश हुआ तो आपने फ़ैसला दिया कि भूमि उसके स्वामी की है और जिसके वृक्ष थे उसे आदेश दिया कि वह उन पेड़ों को कटवाकर ले जाए। अतः पेड़ कटवा दिए गए। —अबू दाऊद

इससे फ़िक़ह की इस बात की पुष्टि होती है कि किसी बेकार पड़ी ज़मीन के स्वामी का पता न चले और उसे आबाद कर लिया जाए तो स्वामी का पता चलने पर ज़मीन उसे लौटा दी जाएगी और ज़मीन के मालिक की जो हानि हुई है ज़मीन को

आबाद करनेवाला उसकी क्षतिपूर्ति करेगा। —हिदाया 4/478

(2) फ़िक़्ह हनफ़ी के विचार से बेकार पड़ी (उफ़तादा) भूमि वह है जो आबादी से दूर हो। जो ज़मीन आबादी के निकट हो, उससे आबादी के अनेक हित जुड़े रहते हैं। अत: आबादकारी के आदेश इससे सम्बद्ध न होंगे।

इमाम शाफ़ई (रह०) और इमाम अहमद (रह०) आदि कहते हैं कि बेकार पड़ी ज़मीन को आबाद करने के लिए इस्लामी राज्य के शासक व इमाम की अनुमति की आवश्यकता नहीं है। जो व्यक्ति उसे आबाद करे उसी का अधिकार स्वीकार किया जाएगा परन्तु इमाम अबू हनीफ़ा (रह०) ने शासक की राय को अनिवार्य ठहराया है। इमाम मालिक कहते हैं कि जो भूमि आबादी के निकट हो उसके लिए तो शासक व इमाम की अनुमति आवश्यक है, परन्तु जो भूमि दूर हो उसके लिए अनुमति की आवश्यकता नहीं है। —हिदाया 4/478, फ़तहुल बारी 5/12

(3) किसी ने ज़मीन की हदबन्दी कर ली और तीन वर्ष तक उसे आबाद न किया तो इस्लामी राज्य उससे भूमि लौटा लेगा तथा अन्य व्यक्ति को दे देगा। क्योंकि प्रथम व्यक्ति को ज़मीन इसलिए दी गई थी ताकि वह उसे आबाद करे और 'उश्र' तथा 'ख़िराज'[1] के द्वारा लोगों को लाभ पहुँचे। केवल हदबन्दी को 'ज़मीन की आबादकारी' नहीं कहा जा सकता। —हिदाया 4/478

इसका समर्थन हज़रत उमर (रज़ि०) के इस कथन से भी होता है :

"जिसने तीन वर्ष तक ज़मीन को बिना आबाद किए छोड़ दिया और किसी अन्य व्यक्ति ने आकर उसे आबाद कर लिया तो वह उसी की होगी।"

—फ़तहुल बारी 5/4

(4) आबादकारी के अर्थ में कृषि एवं खेती भी है और मकान का निर्माण भी। 'हनफ़ी फ़िक़्ह' के अनुसार इसके प्रारंभिक प्रयास भी इसमें सम्मिलित हैं। —हिदाया 4/477

(5) बेकार पड़ी ज़मीन को आबाद करने का अधिकार मुसलमानों की भाँति ज़िम्मियों (ग़ैरमुसलिमों) को भी प्राप्त होगा। —हिदाया 4/477

ग़ैरआबाद या बंजर भूमि को आबाद करने के विषय में इस्लामी क़ानून बहुत विस्तृत है। यहाँ उसके केवल कुछ पहलुओं की ओर संकेत किया गया है।

वृक्षारोपण

आहार, स्वास्थ्य और पर्यावरण के दृष्टिकोण से वृक्षों का महत्त्व बिलकुल स्पष्ट है। इनसे साफ़-सुथरी और स्वच्छ हवा मिलती है। वे ठंडी और आनन्ददायक छाया देते हैं।

---

1. 'उश्र' का अर्थ पैदावार का दसवाँ भाग, 'ख़िराज' का अर्थ भूमिकर या लगान है। (अनुवादक)

अनेक वृक्षों के फूलों और पत्तों में इनसानों और पशुओं का आहार और उपचार है। उनमें वे वृक्ष भी हैं जो उत्तम, रुचिकर और उत्कृष्ट फल पैदा करते हैं, जो उत्तम पोषक तत्त्ववाले हैं और जिनका विकल्प इनसान के पास नहीं है। इनकी सूखी लकड़ी निर्माण के काम आती है, ईंधन में प्रयोग होती है तथा इनसे अन्य बहुत-से लाभ उठाए जाते हैं।

जंगलों से लाभ तथा उनके प्रभावों से हम सब परिचित हैं। इनके द्वारा ठीक समय पर वर्षा होती है, मौसम में उचित और रुचिपूर्ण परिवर्तन आता है, प्रदूषण तथा अशुद्धता दूर होती है। वे भूमि-कटाव और बाढ़ की रोकथाम का भी साधन हैं। केवल यही नहीं बल्कि जंगलों के और भी बहुत-से लाभ हैं।

ज़मीन की आबादकारी में वृक्षारोपण तथा बाग़ों का लगाना भी शामिल है। हदीसों में अलग से इसकी ओर विशेष ध्यान दिलाया गया है। हज़रत अनस (रज़ि०) रिवायत करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया :

- "मुसलमान जो पौधा लगाता या कृषि करता है उससे पक्षी, इनसान या पशु कुछ खाते हैं तो वह उसकी ओर से सदक़ा है।" —बुख़ारी

इसी अर्थ की एक रिवायत में हज़रत जाबिर (रज़ि०) से उद्धृत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया :

- "मुसलमान कोई वृक्ष लगाता है तो उससे जो कुछ खाया जाता है वह उसकी ओर से सदक़ा है। (यहाँ तक कि) जो उससे चोरी हो जाए वह (भी) सदक़ा है, जो जंगली पशु खा जाएँ वह (भी) सदक़ा है, पक्षी जो खाएँ वह भी सदक़ा है। कोई व्यक्ति उसमें से कुछ ले ले तो वह भी सदक़ा है।" —मुसलिम

हज़रत अनस (रज़ि०) की हदीस के तहत हाफ़िज़ इब्न हजर कहते हैं कि इस हदीस में वृक्ष लगाने और खेती करने की श्रेष्ठता बताई गई है और भूमि को आबाद करने की प्रेरणा भी दी गई है।

- इसके बाद कहते हैं कि इससे उपजाऊ ज़मीन रखने और उसमें निवास करने का भी प्रमाण मिलता है। इससे उन संन्यासियों के विचार का खंडन होता है जो इन कामों को बुरा समझते हैं। कुछ रिवायतों से ऐसा लगता है जैसे इन कामों को घृणा से देखा गया है, परन्तु यह उस दशा में है जब व्यक्ति इनमें व्यस्त होकर दीनी कामों से ग़ाफ़िल हो जाए। —फ़तहुल बारी 5/3

हज़रत मुआज़ (रज़ि०) की रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया :

- "जिस व्यक्ति ने किसी पर अत्याचार एवं ज़्यादती किए बिना किसी भवन का निर्माण किया अथवा अत्याचार एवं ज़्यादती किए बिना कोई वृक्ष लगाया तो उसके लिए जारी रहनेवाला अज्र है जब तक कि अल्लाह तआला की

मख़लूक़ उससे फ़ायदा उठाए।" —मुसनद अहमद 3/338

वृक्षारोपण अथवा बाग़ लगाने का काम इनसान अपने निजी लाभ के लिए भी कर सकता है। इसका भी सवाब है। परन्तु यदि यही काम जनसाधारण के लाभ के लिए हो तो उसका अज्र और प्रतिदान पहले से अधिक है। यह 'अनवरत दान' का एक रूप है। अर्थात आदमी की मृत्यु के बाद उसके लगाए हुए वृक्ष से जब तक लोग फ़ायदा उठाएँगे उसे प्रतिदान (सवाब) मिलता रहेगा। मुसलिम की जो रिवायत अभी ऊपर गुज़री है, उसमें 'क़ियामत तक' के शब्द भी आए हैं, अर्थात उसे क़ियामत तक अज्र व सवाब पहुँचता रहेगा। एक वृक्ष लगाया जाए तो उससे अनेक वृक्ष पैदा हो सकते हैं। इसी प्रकार किसी चीज़ की थोड़ी-सी खेती अधिक खेती का कारण बन सकती है। जब तक यह बाक़ी है सवाब जारी रहेगा क्योंकि अल्लाह की मख़लूक़ उससे फ़ायदा उठाती रहेगी। यह क्रम क़ियामत तक लम्बा हो सकता है। —नववी : शरह मुसलिम 2/15

एक व्यक्ति ने दमिश्क़[1] में हज़रत अबू दरदा (रज़ि०) को वृक्ष लगाते देखा तो कहा कि आप अल्लाह के रसूल के सहाबी हैं, इस (सांसारिक मोह) में लगे हुए हैं। हज़रत अबू दरदा (रज़ि०) ने फ़रमाया : आपत्ति करने में जल्दी न करो, (यह तो एक सवाब का काम है जिसमें मैं व्यस्त हूँ) मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से सुना है :

- "यदि कोई व्यक्ति वृक्ष लगाए और उसके फल से आदमी या अल्लाह की कोई मख़लूक़ लाभ उठाए तो यह उसके लिए एक सदक़ा है।"

—मुसनद अहमद 6/444

इन हदीसों में जो श्रेष्ठता बयान हुई है उसमें मार्ग के किनारे छायादार वृक्ष लगाना, जनहित के लिए बाग़ लगाना, पार्क बनवाना और जंगलों की सुरक्षा एवं उनकी देखभाल भी आ सकती है।

मसजिदों का निर्माण

मसजिद का निर्माण बुनियादी तौर पर अल्लाह की इबादत के लिए होता है। इसका निर्माण प्रत्यक्ष रूप से इबादत में सहयोग है। परन्तु प्रारंभिक काल में मसजिदें इबादत के अतिरिक्त मुसलमानों के शैक्षिक एवं राजनैतिक केन्द्रों की भी हैसियत रखती थीं। इनकी यह हैसियत अब बहुत परिवर्तित हो चुकी है। अतः जनहित सम्बन्धी सेवाओं के तहत इनका उल्लेख अवश्य किया जा सकता है। मसजिद के निर्माण का सवाब हज़रत उसमान (रज़ि०) से उल्लिखित हदीस में इस प्रकार बयान

---

1. दमिश्क़—इस्लामी राज्य का एक प्रान्त जो आज देश सीरिया में है और इसी नाम से जाना जाता है।

हुआ है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया :

- "जिसने अल्लाह की प्रसन्नता हेतु मसजिद बनाई तो अल्लाह तआला उसके लिए इसी प्रकार का (घर) जन्नत में बनाएगा।" —बुख़ारी, मुसलिम

पाठशालाओं की स्थापना

क़ौमों के मानसिक और वैचारिक गठन में शिक्षा बड़ी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। अतः किसी क़ौम में जनहित के जो काम किए जाते हैं उनमें शिक्षा को आधारभूत महत्त्व प्राप्त है। इस्लाम ने इस महत्त्व को स्वीकारा है और इसके विकास का भरपूर प्रयत्न किया है। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने ज्ञान के प्रचार-प्रसार को धार्मिक कर्त्तव्य ठहराया है और निर्देश दिया है कि जो व्यक्ति दीन (धर्म) का जितना भी ज्ञान प्राप्त करे, उसे दूसरों तक पहुँचाए। वर्तमान युग में शिक्षा की उन्नति के बड़े साधन शैक्षणिक संस्थाएँ और पाठशालाएँ हैं। यहीं से वे व्यक्ति बनते हैं जो ज्ञान व शिल्प, संस्कृति व सभ्यता, अर्थव्यवस्था तथा राजनीति के विभिन्न विभागों को चलाते हैं। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के ज़माने में इस प्रकार की संस्थाएँ तो नहीं थीं परन्तु मसजिदों से ज्ञान का प्रकाश चारों ओर फैलता था। वहाँ शैक्षणिक गोष्ठियाँ होती थीं, ज्ञान सम्बन्धी मण्डल (हलक़े) स्थापित थे और पढ़ने-पढ़ाने का फ़र्ज़ पूरा किया जाता था।[1] आप (सल्ल०) के बाद मुसलमानों ने शैक्षणिक संस्थाएँ स्थापित कीं, जहाँ विशुद्ध धार्मिक शिक्षाओं के साथ उनके प्रकाश में समकालीन विचारधाराओं को भी पढ़ाया जाता था। इन संस्थाओं ने उम्मत के अनेक चिन्तक एवं 'मुज्तहिद' (शास्त्रवेत्ता) पैदा किए।

चिकित्सालयों की स्थापना

इस्लाम से पूर्व अरब में लोग अपना उपचार स्वयं ही करते-कराते थे। एक विचार से यह हर व्यक्ति की निजी अथवा अधिक से अधिक उसकी पारिवारिक समस्या थी, जिसका समाधान वह अपनी शक्ति एवं साधनों के आधार पर करने का प्रयत्न करता था। सार्वजनिक चिकित्सालयों अथवा अस्पतालों का वुजूद नहीं था। इस्लाम के आने के बाद भी काफ़ी समय तक यही स्थिति रही, परन्तु उसने सेवा की जो भावना पैदा की थी, उसके परिणामस्वरूप इस प्रकार के चिकित्सालयों की बुनियाद पड़ गई। 'रफ़ीदा' नामक एक महिला सहाबी के बारे में आता है कि उन्होंने 'मसजिद नबवी' के समीप एक ख़ेमा लगा रखा था, जिसमें वह केवल सवाब के लिए युद्ध में ज़ख़्मी होनेवाले उन लोगों की मरहम-पट्टी और उपचार करती थीं जिनकी देखभाल करनेवाला कोई और न होता

---

1. विस्तार के लिए देखें लेखक का (उर्दू) लेख, 'मुहम्मद अरबी के इल्मी एहसानात' प्रकाशित; सेहमाही तहक़ीक़ाते इस्लामी, जनवरी-मार्च 1987

था। हज़रत सअद बिन मुआज़ (रज़ि०) ख़ंदक़ (खाई) के युद्ध में ज़ख़्मी हुए तो अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने उनकी क़ौम से कहा कि वह उन्हें इसी शिविर में रखें ताकि वे निकट रहें और आप (सल्ल०) को हाल-चाल पूछने के लिए आने में आसानी हो।[1]

इससे आवश्यकता पड़ने पर दवा-इलाज के लिए शिविर लगाने का स्पष्ट प्रमाण मिलता है। चूँकि चिकित्सालय इसी आवश्यकता को स्थायी रूप से पूरी करते हैं, अतः इस्लामी इतिहास साक्षी है कि मुसलमानों का इनके निर्माण एवं उन्नति में बड़ा योगदान रहा है।

जनहित के कामों के लिए धर्मार्थदान (वक़्फ़) की श्रेष्ठता

जनहित के लिए ज़मीन, जायदाद तथा अपनी मूल्यवान वस्तुओं को 'वक़्फ़' करने की प्रेरणा दी गई है। यह इन कामों को जारी रखने का एक बड़ा साधन भी है और वक़्फ़कर्ता के लिए 'अनवरत दान' (सदक़-ए-जारिया) भी। अनवरत दान से सम्बन्धित कुछ हदीसें पिछले पृष्ठों में गुज़र चुकी हैं। यहाँ एक और हदीस पेश की जा रही है। यह हदीस हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से रिवायत की गई है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया :

- "जब इनसान मर जाता है तो उसके कर्म का सिलसिला समाप्त हो जाता है, परन्तु तीन स्थितियाँ ऐसी हैं कि उसके कर्म बाक़ी रहते हैं और उसे सवाब मिलता रहता है। वे ये हैं : 'सदक़-ए-जारिया' या अनवरत दान उसका वह ज्ञान जिससे लोग फ़ायदा उठाएँ और नेक संतान जो उसके लिए दुआ करती रहे।" —मुसलिम

इमाम नववी इसकी व्याख्या इस प्रकार करते हैं :

"अनवरत दान से अभिप्राय वक़्फ़ है।" —शरह मुसलिम : 2/41

आगे कहते हैं :

---

1. इब्न हिशाम; सीरतुन्नबी : 3/258 तथा फ़तहुल बारी : 7/290, हज़रत सअद बिन मुआज़ (रज़ि०) के इस क़िस्से का बुख़ारी की एक रिवायत में इस प्रकार उल्लेख है : 'अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने मसजिद नबवी के निकट ही हज़रत 'सअद' के लिए शिविर लगवाया था ताकि सरलतापूर्वक हाल मालूम कर सकें।' रफ़ीदा (रज़ि०) का यह शिविर ज़ख़्मियों की मरहम-पट्टी और सेवा के लिए था, इसी में हज़रत सअद रखे गए थे, इसी कारण रावी (उल्लेखकर्ता) ने कदाचित इसे इस प्रकार बयान किया है कि मानो यह शिविर उन ही के लिए लगा था। बुख़ारी ही की एक अन्य रिवायत में इसे 'बनू ग़िफ़ार' का शिविर कहा गया है। हाफ़िज़ इब्न हजर कहते हैं कि संभव है कि रफ़ीदा के पति का सम्बन्ध बनू ग़िफ़ार से हो, इसी कारण उसे बनू ग़िफ़ार का शिविर कहा गया हो। —फ़तहुल बारी : 7/292

"इसमें वक़्फ़ के उचित होने और उसके भारी सवाब का तर्क मौजूद है।"

—शरह मुसलिम : 2/41

वक़्फ़ के विभिन्न रूपों का अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के समय में प्रमाण मिलता है, उनमें से कुछ का यहाँ उल्लेख किया जा रहा है :

(1) इस्लाम ने कल्याणकारी कार्यों का जो प्रतिदान (सवाब) बताया है उसकी चाह में सहाबा (रज़ि०) ने अपनी उत्कृष्ट तथा प्रिय वस्तुओं को वक़्फ़ कर दिया।

हज़रत उमर (रज़ि०) को ख़ैबर में ग़नीमत के रूप में एक ज़मीन मिली (कुछ रिवायतों में इसका नाम 'समग़' बताया गया है)। वे अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की सेवा में उपस्थित हुए और अर्ज़ किया कि जो ज़मीन ख़ैबर में मुझे मिली है उससे मूल्यवान और उत्कृष्ट चीज़ मुझे कभी नहीं मिली। मैं उसे अल्लाह की राह में देना चाहता हूँ। आप बताएँ कि इसका उत्तम तरीक़ा क्या होगा? आप (सल्ल०) ने फ़रमाया :

- "यदि तुम पसन्द करो तो उसका मूल वक़्फ़ कर दो और उसकी आय को सदक़ा कर दो।"

हज़रत उमर (रज़ि०) ने आपके मशविरे पर अमल करते हुए उसे इस प्रकार वक़्फ़ किया :

"इसका मूल न तो बेचा जाएगा और न हिबा किया जाएगा और न कोई इसका उत्तराधिकारी ही होगा। इसकी आय सदक़ा होगी—मुहताजों और नातेदारों पर (जो इसके अधिकारी होंगे), ग़ुलामों के आज़ाद करने और अल्लाह के रास्ते (जिहाद) में। यह मेहमानों और यात्रियों पर भी ख़र्च होगी। जो व्यक्ति इसकी देखभाल करे वह भले और सामान्य रीति के अनुसार इसकी आय से स्वयं भी खा सकता है और मित्रों को भी खिला सकता है, परन्तु इससे धन संचित नहीं करेगा।"

—बुख़ारी, मुसलिम

इस हदीस से वक़्फ़ के जो आदेश मालूम होते हैं यहाँ उनका वर्णन नहीं करना है। यहाँ तो केवल यह बताना अभिप्राय है कि सार्वजनिक हित एवं भलाई के कामों के लिए भी वक़्फ़ होता था और यह वक़्फ़ इसी प्रकार का था।

(2) मुसलमानों की धार्मिक और सामूहिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कुछ सहाबियों ने अपनी सामूहिक जायदाद वक़्फ़ कर दी।

अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने मदीना पहुँचने के बाद जब मसजिद नबवी के निर्माण का इरादा किया तो उसके लिए एक ज़मीन का चयन किया जो 'बनू नज्जार' की थी। आपने उनके ज़िम्मेदारों को बुलाया और उसका मूल्य मालूम किया। उन लोगों ने कहा :

"हमें इसका मूल्य नहीं चाहिए, ख़ुदा की क़सम! हम तो इसका मूल्य केवल अल्लाह तआला से चाहते हैं।"

—बुख़ारी, मुसलिम

इस प्रकार मसजिद नबवी का निर्माण वक़्फ़ की ज़मीन पर हुआ। अतः यह इस बात की दलील है कि जो चीज़ एक से अधिक लोगों के स्वामित्व में हो उन सबकी मरज़ी से वह वक़्फ़ की जा सकती है।[1]

(3) अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने जब भी किसी सामूहिक आवश्यकता या जनहित की ओर ध्यान आकृष्ट कराया तो वह वक़्फ़ के द्वारा पूरी कर दी गई। एक बार आप (सल्ल०) ने फ़रमाया कि जो व्यक्ति मसजिद (मसजिद नबवी) के विस्तार के लिए फ़लाँ ज़मीन ख़रीदकर वक़्फ़ कर दे तो उसे जन्नत में उससे अच्छी ज़मीन मिलेगी। हज़रत उसमान (रज़ि०) ने वह ज़मीन अपने पैसे से ख़रीदकर वक़्फ़ कर दी। —तिरमिज़ी, नसई

अल्लाह के रसूल (सल्ल०) जब हिजरत करके मदीना आए तो वहाँ देखा कि मीठे पानी का एक ही कुआँ था जिसे 'बिअ्रे-रूमा' कहा जाता था। आपने फ़रमाया कि जो व्यक्ति इसे ख़रीदकर मुसलमानों के लिए वक़्फ़ कर दे और उसमें उसका भी उतना ही भाग हो जितना एक साधारण मुसलमान का होता है, तो उसे जन्नत में इससे उत्तम चीज़ मिलेगी। हज़रत उसमान (रज़ि०) ने उसे ख़रीदकर वक़्फ़ कर दिया।[2]

—तिरमिज़ी, नसई, बुख़ारी

---

1. बुख़ारी में अध्याय इस प्रकार है : "यदि सम्मिलित भूमि उसके स्वामी वक़्फ़ (दान) कर दें तो यह जाइज़ है।" वाक़िदी का कहना है कि हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) ने भूमि स्वामियों को मूल्य दे दिया था और वह दस दीनार था। हाफ़िज़ इब्न हजर (रह०) कहते हैं कि यदि यह सिद्ध भी हो जाए तो भी इमाम बुख़ारी का तर्क उचित होगा। क्योंकि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने बनू नज्जार के दान से इनकार नहीं किया था कि इसके स्वामित्व में कई व्यक्ति सम्मिलित हैं और यह वक़्फ़ नहीं की जा सकती। (फ़तहुल बारी : 5/258) इब्न हुबैरा ने लिखा है कि इस बात पर चारों इमामों की सहमति है कि सम्मिलित वस्तु वक़्फ़ की जा सकती है। इस विषय में फ़ुक़हा के विचारों के अध्ययन के लिए देखें नैलुल औतार : 6/133, इब्न क़ुदामा : अल-मुग़नी 5/643-644
2. एक रिवायत के अनुसार यह कुआँ रूमतुल ग़िफ़ारी का था। उनकी ओर सम्बन्धित होकर वह 'बिअ्रे-रूमा' के नाम से प्रसिद्ध हो गया। कहा जाता है कि वह मुसलमान हो गए थे। हज़रत उसमान (रज़ि०) ने पैंतीस हज़ार दिरहम में वह कुआँ ख़रीदकर उसे वक़्फ़ कर दिया था। नववी : तहज़ीबुल-अस्मा-वल-लुग़ात (अल-क़िस्म सानी) 1/36. दूसरी रिवायत में यह है कि यह एक कुएँ या जलस्रोत का नाम था। उसका स्वामी बनू-ग़िफ़ार का एक व्यक्ति था। वह एक 'मुद्द' (एक छोटी माप) ग़ल्ले के बदले एक मशक पानी बेचता था। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने उससे कहा कि यह कुआँ मुझे दे दो, इसके बदले तुम्हें जन्नत का जलस्रोत मिलेगा। उसने कहा : मेरे बच्चों की आजीविका का यही एक साधन है। हज़रत उसमान (रज़ि०) को जब इसकी सूचना मिली तो उन्होंने उसे उपरोक्त धनराशि में ख़रीदकर वक़्फ़ कर दिया।

—नैलुल औतार : 6/131

(4) मृतक की ओर से वक़्फ़ को अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने पसन्द किया ताकि उसका सवाब उसे निरन्तर पहुँचता रहे। आपके समय में इसपर अमल भी हुआ। अतः हज़रत सअद बिन उबादा (रज़ि०) ने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से अर्ज़ किया कि मेरी माँ (उमरा बिन्त मसऊद रज़ि०) की सहसा मृत्यु हो गई। उस समय मैं उपस्थित नहीं था। यदि मैं उनकी ओर से सदक़ा करूँ तो क्या उन्हें उसका सवाब पहुँचेगा? आपने फ़रमाया : हाँ! अवश्य। उन्होंने कहा : मैं आपको साक्षी बनाकर कहता हूँ कि मेरा अमुक फलदार बाग़ मेरी माँ की ओर से सदक़ा है।[1] —बुख़ारी

जनहित के कामों के लिए मुसलमानों में वक़्फ़ का प्रचलन हर ज़माने में रहा है। इससे इन कामों को जारी रखने में बड़ी सहायता मिलती रही है।

जनहित से सम्बन्धित इस्लाम की जो शिक्षाएँ उपरोक्त पृष्ठों में प्रस्तुत की गई हैं उनकी पूर्णता कुछ अन्य निर्देशों से होती है।

सार्वजनिक सम्पत्ति को हानि न पहुँचाई जाए

इस्लाम ने एक ओर तो वृक्षारोपण की प्रेरणा दी है, दूसरी ओर इस बात से भी रोका है कि किसी छायादार अथवा फलदार पेड़ को काट दिया जाए। हज़रत अब्दुल्लाह बिन हबशी (रज़ि०) रिवायत करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया :

- "जिसने बेरी का कोई पेड़ काटा, अल्लाह तआला उसे सिर के बल जहन्नम में डालेगा।" —अबू दाऊद

बेरी का पेड़ यदि किसी के स्वामित्व में हो तो वह उसे काट सकता है और उससे लाभ भी उठा सकता है। यह गुनाह नहीं है। यहाँ उस पेड़ के काटने पर यातना की सूचना दी गई है जो किसी की निजी मिलकियत न हो और जिससे जनसाधारण का हित जुड़ा हुआ हो।

इमाम अबू दाऊद इस हदीस की व्याख्या इस प्रकार करते हैं :

"जो व्यक्ति बेरी का वह पेड़ काटे जो मैदान में हो, जिससे यात्री और पशु

---

1. बुख़ारी की एक अन्य रिवायत में है कि हज़रत सअद बिन उबादा (रज़ि०) ने अपनी माँ की नज़्र (मन्नत) के विषय में पूछा था कि उनकी मृत्यु हो गई और वह अपनी नज़्र पूरी न कर सकीं। आपने फ़रमाया : तुम उनकी ओर से नज़्र पूरी कर दो। हाफ़िज़ इब्न हजर कहते हैं कि संभव है कि सअद ने अपनी माँ की भेंट और उनकी ओर से सदक़ा, दोनों ही बातों के बारे में पूछा हो। उपरोक्त रिवायत से मालूम होता है कि उन्होंने अपनी माँ की ओर से बाग़ सदक़े में दिया था। नसई में है कि उन्होंने आपकी सलाह से कुआँ खुदवाया था। एक रिवायत में है कि उनकी माँ ने गुलाम आज़ाद करने की नज़्र मानी थी। (फ़तहुल बारी 5/252-253) अतिरिक्त जानकारी के लिए देखें 'नसई : किताबुल वसाया'।

छाया प्राप्त करते हों, यह काटना अकारण और अन्यायपूर्ण हो और उस पेड़ पर उसका कोई अधिकार न हो तो अल्लाह तआला उसे सिर के बल जहन्नम में डाल देगा।"[1] —अबू दाऊद

इससे यह तर्क करना ग़लत न होगा कि सार्वजनिक सम्पत्ति से सम्बन्धित किसी भी चीज़ को नुक़सान पहुँचाना गुनाह का कारण है, क्योंकि यह ख़ुदा की मख़लूक़ को कष्ट पहुँचाने, और उसे जो राहत और आराम पहुँच सकता है उसे समाप्त कर देने के समान है। अल्लाह के निकट यह हरकत बहुत नापसन्द और अशुभ है।

वे जीवन-साधन जो सार्वजनिक सम्पत्ति हैं

इस्लाम की विचारधारा यह है कि अल्लाह की इस धरती पर इनसान की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जो भंडार मौजूद हैं और जिनके पैदा करने में किसी व्यक्ति के परिश्रम का कोई योगदान नहीं है, वे सबके लिए हैं और सभी उनसे फ़ायदा उठाने का अधिकार रखते हैं। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया है :

- "तीन चीज़ों में समस्त मुसलमान भागीदार हैं—पानी, चारा और आग।"[2]

—अबू दाऊद

इस हदीस में पानी से अभिप्राय प्राकृतिक जलस्रोतों, नदियों, दरियाओं और तालाबों आदि के पानी से है। इसी प्रकार पशुओं का वह चारा जो जंगलों और मैदानों में पाया जाता है उससे फ़ायदा उठाने का अधिकार सबको प्राप्त है। आग से आशय ईंधन में काम आनेवाली लकड़ी और आग जलाने का सामान आदि से हो सकता है, जो किसी की निजी मिलकियत में न हो।

क़ौमी महत्त्व के साधन सबके लिए हैं

क़ौमी और राष्ट्रीय महत्त्व के जीवन-साधन किसी व्यक्ति के स्वामित्व में नहीं होंगे, बल्कि उनसे सभी को फ़ायदा उठाने के समान अवसर प्राप्त होंगे। उबैज़ बिन हम्माल (रज़ि०) बयान करते हैं कि वे अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की सेवा में उपस्थित हुए और निवेदन किया कि 'मआरिब' (यमन का एक क्षेत्र) में नमक की जो खान है वह उन्हें प्रदान कर दी जाए। आप (सल्ल०) ने वह खान उन्हें दे दी। जब वह वापस हुए तो एक व्यक्ति अक़रा बिन हाबिस ने कहा : आपने उन्हें एक ऐसी खान प्रदान कर दी

---

1. इस विषय पर अतिरिक्त जानकारी के लिए देखें, बैहक़ी : अस्सुननुल कुबरा : 6/140-141.
2. यह हदीस अबू दाऊद में एक मुहाजिर सहाबी से रिवायत की गई है। सहाबी का नाम नहीं दिया गया है। परन्तु इब्न माजा में यही हदीस हज़रत अब्दुल्लाह बिन अब्बास (रज़ि०) से रिवायत की गई है।

जो पानी के भण्डार के समान है, वहाँ का प्रत्येक व्यक्ति उससे लाभ उठाता है। अतः आप (सल्ल०) ने उनसे वह खान वापस ले ली और सार्वजनिक हित के लिए वक़्फ़ क़र दी। (एक रिवायत में है कि आपने उन्हें इसके बदले में एक ज़मीन और बाग़ प्रदान कर दिया।)

उबैज़ बिन हम्माल (रज़ि०) ने यह भी पूछा कि अराक (एक पेड़ या झाड़ी जिसके पत्ते ऊँटों के चारे के लिए प्रयोग होते हैं) के किस क्षेत्र को हदबन्दी के द्वारा अपने स्वामित्व में लिया जा सकता है? आपने फ़रमाया : जहाँ ऊँटों के पैर न पहुँचें (अर्थात जो आबादी से दूर हो या पहाड़ी क्षेत्र हो)। —तिरमिज़ी, इब्न माजा

इससे ज्ञात होता है कि राज्य भी इस प्रकार का कोई प्रयास नहीं करेगा कि जिन जीवन-साधनों से जनसाधारण का हित जुड़ा हुआ है उनपर किसी एक अथवा कुछ व्यक्तियों का अधिकार हो जाए और अन्य लोग उनसे वंचित रह जाएँ।

धर्मवेत्ताओं (फ़क़ीहों) ने लिखा है कि हाकिम ऐसी कोई चीज़ किसी एक व्यक्ति को नहीं देगा जिससे आम मुसलमानों की आवश्यकताएँ पूरी होती हों। जैसे नमक की खानें या ऐसे कुएँ जिनसे आस-पास के लोग लाभ उठा रहे हों। —हिदाया 4/478

यहाँ नमक और पानी का उल्लेख हुआ है। इसमें आवश्यकता की अन्य वस्तुएँ भी आ सकती हैं। अल्लामा इब्न हुबैरा ने लिखा है कि चारों इमामों की इसपर सहमति है कि नमकवाली ज़मीन या जिस चीज़ से भी आम मुसलमानों का लाभ जुड़ा हुआ हो, उसपर किसी एक मुसलमान का अकेले अधिकार जमा लेना जाइज़ नहीं है।

—अल-अफ़साहु अन-मानियुस-सिहाह 2/51

निजी जीवन-साधनों में भी अन्य लोगों का हक़ है

व्यक्ति कभी-कभी प्रकृति के भण्डारों को अपने निजी प्रयासों एवं परिश्रम से प्राप्त करता है। वह उसका स्वामी हो सकता है। मिसाल के तौर पर, उसने अपनी आवश्यकता के लिए कुआँ खुदवाया, नहर निकाली या हौज़, जलकुण्ड या टैंक में जल का भण्डार इकट्ठा किया। इस विषय में यह निर्देश है कि उससे अन्य ज़रूरतमन्दों को वंचित न रखा जाए। एक हदीस में इस बात पर बड़े ज़ोरदार अन्दाज़ में यातना की धमकी दी गई है कि व्यक्ति के पास अतिरिक्त मात्रा में पानी हो और वह ज़रूरतमन्दों को उसके उपयोग की अनुमति न दे।

हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) की रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने तीन प्रकार के लोगों के विषय में फ़रमाया है कि अल्लाह क़ियामत के दिन न तो उन्हें देखेगा, न उनसे बात करेगा और उनपर उसकी कठोर यातना होगी। उनमें से एक का वर्णन इन शब्दों में किया :

- "एक वह व्यक्ति जिसके पास रास्ते के किनारे (कुआँ आदि के रूप में) अतिरिक्त पानी था और उसने यात्री को उससे (लाभान्वित होने से) रोक दिया।"
  —बुख़ारी, मुसलिम
- "अल्लाह तआला क़ियामत के दिन फ़रमाएगा कि आज मैं तुम्हें अपने पुरस्कार से उसी प्रकार वंचित रखूँगा जिस प्रकार तुमने उस अतिरिक्त चीज़ के देने से इनकार कर दिया था, जिसकी उत्पत्ति में तुम्हारा कोई हाथ न था।"[1]
  —बुख़ारी

इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि इस्लाम इस बात की कितनी ताकीद करता है कि जिस व्यक्ति के पास जीवन-साधन हैं उनसे अपनी आवश्यकता पूर्ति के बाद दूसरे लोगों की आवश्यकताओं का भी ध्यान रखे।

---

1. व्यक्ति के पास जल का भण्डार हो तो उसके लिए दूसरों की आवश्यकता का पूरा करना किस सीमा तक अनिवार्य है, इसके विषय में विस्तार के लिए देखें फ़तहुल बारी : 5/21

जनकल्याण की संस्थाएँ एवं संगठन

संस्थाओं की आवश्यकता एवं महत्त्व

इनसान इस दुनिया में कुछ बुनियादी आवश्यकताएँ तथा स्वाभाविक माँगें लेकर पैदा होता है। उनको पूरा करने में उसे विभिन्न स्तरों पर परिवार, शुभचिन्तक व्यक्तियों, जनहित सम्बन्धी संस्थाओं और राज्य का सहयोग मिलता रहता है। यह सहयोग भरपूर हो तो उसके वुजूद, उसकी स्थिरता और उसकी उन्नति की संभावनाएँ बढ़ जाती हैं। इसमें जितनी कमी होगी उतनी ही यह संभावनाएँ कम होती चली जाएँगी। एक व्यक्ति के निजी दृष्टिकोण से देखा जाए तो कभी-कभी व्यक्ति और संस्थाओं के सहयोग में कोई भारी अन्तर महसूस नहीं होता, क्योंकि इनमें से हर एक का सहयोग सामयिक और अस्थाई होता है। उदाहरण के लिए, शैक्षणिक, आर्थिक, और चिकित्सा सम्बन्धी संस्थाओं की सेवाओं को लीजिए। एक विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त कर ले तो विद्यालय और कॉलेज का काम समाप्त हो जाता है, बेरोज़गार को रोज़गार मिल जाए तो आर्थिक संस्थाओं का दायित्व पूरा हो जाता है, रोगी को पर्याप्त चिकित्सा सहूलतें उपलब्ध कराने के बाद चिकित्सालय और दवाख़ाने अपने कर्त्तव्य से भारमुक्त हो जाते हैं। यही काम किसी व्यक्ति का परिवार या उसका कोई शुभचिन्तक पूरा करता है। परन्तु इस पहलू से संस्थाओं और संगठनों का महत्त्व बहुत अधिक बढ़ जाता है कि उनकी सेवाएँ पूरीं आबादी और उसके विभिन्न वर्गों के लिए होती हैं। उनके सामने एक व्यक्ति के हित के स्थान पर समूचे समाज का हित होता है। किसी व्यक्ति को शिक्षित करके उसे समाज में सम्मान के योग्य बनाना विशेष रूप से उस व्यक्ति की सेवा है, परन्तु एक अच्छे विद्यालय का चलाना, जहाँ से असंख्य छात्र सत्य-ज्ञान, विज्ञान एवं कला से सुसज्जित होकर निकलें, एक पूरी नस्ल की सेवा है।

इसी प्रकार किसी बेरोज़गार को रोज़गार पर लगा देना एक व्यक्तिगत सहयोग है, परन्तु किसी ऐसी संस्था की स्थापना जिससे अनेक बेरोज़गारों की समस्या का समाधान हो, एक पूरे वर्ग के साथ सहयोग है। कल्याणकारी संस्थाएँ किसी व्यक्ति को नहीं बल्कि समाज को सामूहिक रूप से ऊँचा उठाने का प्रयत्न करती हैं। यहाँ धार्मिक और सुधार सम्बन्धी संगठनों की सेवाओं की भी उपेक्षा नहीं की जा सकती। उनका महत्त्व उन सेवाओं से कहीं अधिक है जो भौतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए की जाती हैं।

कल्याणकारी संस्थाओं के द्वारा जनसेवा के कामों को व्यवस्थित एवं संगठित किया जाता है, जिसके कारण उनमें असंतुलन और असंबद्धता उत्पन्न नहीं होने पाती

और जो व्यक्ति जिस सीमा तक सेवा का अधिकारी है उसकी सेवा होती रहती है। कल्याणकारी संस्थाएँ आज के युग में जनसेवा और भलाई के जो व्यापक काम कर रही हैं, उन्हें हर व्यक्ति देख रहा है और समय पड़ने पर लाभ भी उठा रहा है। उन्नत देशों में इनसान की प्रत्येक बुनियादी आवश्यकता की पूर्ति के लिए संस्थाएँ मौजूद हैं। इस प्रकार की संस्थाओं का संचालन इस्लामी शिक्षाओं के ठीक अनुकूल है। इनसे उसका एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य पूरा होता है।

संगठित प्रयास के लाभ

हर युग में ऐसे लोग रहे हैं जिनके द्वारा कल्याणकारी सेवाएँ सम्पन्न होती रही हैं। इनमें से कुछ ऐसी असाधारण सेवाएँ भी हैं जिनसे मानव-जाति को बड़ा लाभ पहुँचा है, परन्तु एक तो इस प्रकार के व्यक्तियों की संख्या किसी भी युग में बहुत अधिक नहीं होती, दूसरे यह कि व्यक्ति के पास शक्ति एवं योग्यता की सम्पत्ति बहुत थोड़ी होती है। उच्च स्तर पर सेवा और कल्याण-कार्य उसकी सामर्थ्य से बाहर होते हैं। इसके लिए आवश्यक है कि बहुत-से व्यक्ति मिलकर सुसंगठित तरीक़े से प्रयत्न करें। संगठन की विशेषता यह है कि वह किसी एक व्यक्ति पर निर्भर नहीं होता, बल्कि वह एक से अधिक व्यक्तियों की योग्यताओं और उनके साधनों का प्रयोग करता है। अतः उसकी क्षमता और शक्ति भी बहुत अधिक होती है और ऐसे काम उसके द्वारा संभव होते हैं जो एक व्यक्ति की पहुँच से बाहर होते हैं। व्यक्ति जिस उद्देश्य की प्राप्ति को कठिन समझता है वही उद्देश्य संगठन के द्वारा सरलतापूर्वक प्राप्त किया जा सकता है। यदि जनकल्याण के लिए सुसंगठित प्रयास किया जाए और समाज की भलाई और कल्याण के काम मिल-जुलकर किए जाएँ तो उनकी उपयोगिता का क्षेत्र विस्तृत हो जाएगा और जिन कामों को महत्त्व देने के बावजूद केवल एक व्यक्ति पूरा नहीं कर पाता, वे सब सम्पन्न हो सकेंगे। बड़ी-बड़ी कल्याणकारी संस्थाओं को स्थापित करने, उन्हें बनाए रखने और अच्छे ढंग से चलाने में एक-दो नहीं, अनेक व्यक्तियों के निरन्तर और अथक प्रयास सम्मिलित होते हैं। इसके बिना वे अस्तित्व में नहीं आ सकतीं और यदि अस्तित्व में आ भी जाए तो अपने उद्देश्य पूरे नहीं कर सकतीं।

इस्लाम ने ज़कात की व्यवस्था राजकीय स्तर पर की है। इस्लामी राज्य का कर्त्तव्य है कि जो लोग 'निसाब' (वह धन जिसपर ज़कात वाजिब हो) के मालिक हैं, उनसे ज़कात वुसूल करे और उन लोगों के बीच वितरित करे जो उसके हक़दार हैं। यह इस बात का प्रमाण है कि इस्लाम जनसेवा के लिए सुसंगठित एवं सुव्यवस्थित प्रयास को पसन्द करता और उसको प्रोत्साहित करता है।

ग़ैरमुसलिमों से सहयोग

इसलाम ने इनसानों की सेवा और उनकी भलाई के कामों में ग़ैरमुस्लिम संगठनों और संस्थाओं को सहयोग देने की शिक्षा दी है। इस विषय में क़ुरआन मजीद ने हमें यह सैद्धान्तिक आदेश दिया है :

- "जो काम नेकी और ईश-भक्ति के हैं उनमें सबको सहयोग दो और जो गुनाह, बुराई और ज़्यादती के काम हैं उनमें किसी को सहयोग न दो। अल्लाह से डरो, निस्संदेह उसका दण्ड बड़ा कठोर है।" —क़ुरआन, 5 : 2

अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को नबी बनाए जाने से पूर्व 'अरब' में कोई भी शक्तिशाली राजनैतिक व्यवस्था न थी जिसके कारण एक प्रकार की राजनैतिक और सामाजिक अव्यवस्था पाई जाती थी और लोगों की जान व माल सुरक्षित न थे। कमज़ोर बलवानों के अत्याचारों का निशाना बनते रहते। कोई उन्हें ज़ुल्म से रोकनेवाला तथा पूछताछ करनेवाला न था। छोटी-छोटी बातों पर युद्ध, रक्तपात और अत्याचारों का बाज़ार गरम हो जाता। उसे ठण्डा करने की कोशिश बड़ी मुश्किल से ही होती। 'मक्का' जैसे दारुल-अमन (शांतिस्थल) तथा केन्द्रीय नगर की दशा भी कुछ अच्छी न थी। इन परिस्थितियों को कुछ सहानुभूति रखनेवाले लोगों ने बदलना चाहा। सलाह-मशविरे के लिए अब्दुल्लाह बिन जुदआन के घर पर एकत्र हुए और निर्णय किया कि अत्याचार, अन्याय और ज़्यादती को हर क़ीमत पर रोका जाएगा। किसी व्यक्ति पर, चाहे वह मक्का का निवासी हो या बाहर से आया हो, अत्याचार न होने दिया जाएगा। अत्याचारी के विरुद्ध उत्पीड़ितों की हिमायत की जाएगी और उसे उसका अधिकार दिलाया जाएगा और ज़रूरतमन्दों और मुहताजों की सहायता की जाएगी।

अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने भी इस समझौते में सक्रिय भूमिका निभाई थी। यह समझौता आपके नबी बनाए जाने से पूर्व हुआ था। परन्तु आपने नबी होने के बाद भी इसकी प्रशंसा करते हुए कहा :

- "मैं अब्दुल्लाह बिन जुदआन के घर पर एक ऐसे समझौते में सम्मिलित हुआ कि यदि मुझे उसके बदले में लाल ऊँट (अरब की मूल्यवान संपत्ति) भी मिल जाएँ तो भी पसन्द नहीं है। यदि इस्लाम के आने के बाद भी मुझे उसका आमंत्रण दिया जाए तो मैं उसे स्वीकार कर लूँगा।"

—इब्न सअद, तबक़ात : 1/129, इब्न हिशाम, सीरतुन्नबी : 1/144-145

अत्याचार और अन्याय की समाप्ति, इनसानों की भलाई और उनकी सेवा के लिए जो संगठन काम करता है वह समाज की बहुमूल्य संपत्ति है। जो समाज ऐसी मूल्यवान संपत्ति से वंचित हो वह दिवालिया हो जाता है। इस्लाम इसका संरक्षक भी है और इसकी प्रगति के लिए भी प्रयत्न करता है।

राज्य से सहयोग

जनसेवा की सबसे बड़ी संस्था राज्य है। व्यक्ति और संस्थाएँ चाहे कितने ही शक्तिशाली हों फिर भी उनकी शक्ति सीमित ही होती है। उनके पास इतने साधन नहीं होते कि हर दिशा में और हर पहलू से समाज की सेवा कर सकें और उसकी सभी कठिनाइयों को दूर कर सकें। राज्य के पास असाधारण साधन होते हैं और वह जन-सेवा के लिए विभिन्न तरीक़े प्रयोग कर सकता है। अतः एक कल्याणकारी राज्य का क़ानूनी और नैतिक दायित्व है कि सम्पूर्ण समाज का प्रबन्ध इस प्रकार करे कि कोई भी व्यक्ति जीवन सम्बन्धी आवश्यक साधनों से महरूम न रहे और उसे वे समस्त सहूलतें और अवसर प्राप्त हों जो उसकी सेवा, सुख और उन्नति के लिए आवश्यक हैं। यदि राज्य अपना दायित्व न निभाए तो उसका वुजूद ही निरर्थक है। परन्तु राज्य इतने भारी दायित्व से उसी समय भारमुक्त हो सकता है जब व्यक्ति उससे सहयोग करें। केवल राज्य के प्रयत्नों से समाज दरिद्रता, अज्ञानता, बेरोज़गारी और बीमारी जैसी विपत्तियों से पाक नहीं हो सकता। इसके लिए आवश्यक है कि हर व्यक्ति में समाज को गिरावट से निकालने और ऊँचा उठाने की भावना पाई जाए। राज्य और व्यक्तियों के परस्पर योगदान और सहयोग ही से जनसेवा का हक़ अदा हो सकता है। इसके बिना यह काम सदा अधूरा और दोषपूर्ण ही रहेगा।

ग़लत विचारों का सुधार

जनसेवा के विषय में कुछ ग़लत विचार भी पाए जाते हैं और इस बारे में सीमा का अतिक्रमण होता रहता है। यहाँ उन ग़लतफ़हमियों को दूर करने का प्रयत्न किया जाएगा।

इनसान पर विभिन्न अधिकार लागू होते हैं

समाज में कोई भी व्यक्ति बिलकुल अलग-थलग जीवन नहीं व्यतीत करता, बल्कि अनगिनत लोगों से उसका सम्पर्क होता है। कुछ लोग उसके दायित्वों को निभाते हैं तो कुछ अन्य लोगों के दायित्वों को वह निभाता है। कुछ लोगों के अधिकार उसपर होते हैं तो उसके अधिकार कुछ अन्य लोगों पर होते हैं। इन अधिकारों और दायित्वों का क्षेत्र निकट और दूर के अनेक व्यक्तियों तक फैला हुआ है। इनके पालन में बड़ी अनियमितताएँ होती हैं। इस्लाम ने इनका सुधार किया है।

अधिकारों में एक स्वाभाविक क्रम है

किसी समाज में इनसान पर जो अधिकार और दायित्व लागू होते हैं उनमें एक स्वाभाविक क्रम है। उनमें से सर्वप्रथम तो उसकी अपनी ज़ात (व्यक्तित्व) का अधिकार है, फिर माँ-बाप, बीवी-बच्चों और नातेदारों के अधिकार हैं। इनके बाद ही दूसरों के अधिकार आते हैं। इस्लाम ने इसी क्रम से अधिकार निश्चित किए हैं। इनसान अपने मुक़ाबले में दूसरों को प्रधानता दे सकता है, इसी प्रकार उसके नातेदार अपने अधिकार से विरक्त भी हो सकते हैं और कमी भी कर सकते हैं, परन्तु उनपर दूसरों को प्रधानता देना उचित नहीं है। जिन लोगों का अधिकार सबसे प्रमुख है वह सबसे प्रमुख ही रहेगा। व्यक्ति उसे न टाल सकता है, न उसकी उपेक्षा कर सकता है। इस्लाम ने अधिकारों का जो क्रम निश्चित किया है उसे एक हदीस के प्रकाश में सरलतापूर्वक समझा जा सकता है। हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से रिवायत करते हैं कि आपने फ़रमाया :

- "उत्तम सदक़ा वह है जो आदमी अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के बाद करे। सर्वप्रथम उन लोगों पर सदक़ा करो (ख़र्च करो) जिनके ख़र्चों (पालन-पोषण) के तुम उत्तरदायी हो।" —बुख़ारी, विस्तार के लिए देखें, फ़तहुलबारी : 3/190

हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) ही की एक अन्य रिवायत इसे और अधिक स्पष्ट कर देती है। कहते हैं :

- "अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने (एक बार) आदेश दिया कि सदक़ा और ख़र्च दिया जाए। इसपर एक व्यक्ति ने पूछा कि अगर मेरे पास एक ही दीनार

है। आप (सल्ल०) ने फ़रमाया : इसे अपने ऊपर सदक़ा (ख़र्च) करो। उसने कहा: मेरे पास एक और दीनार है। आप (सल्ल०) ने फ़रमाया : उसे अपने बच्चे पर ख़र्च करो। उसने कहा : मेरे पास एक और दीनार है। आपने फ़रमाया : उसे अपनी पत्नी पर ख़र्च करो। उसने कहा : मेरे पास एक और है। आप (सल्ल०) ने फ़रमाया : उसे अपने सेवक पर ख़र्च करो। उसने कहा: मेरे पास एक और भी है। आपने फ़रमाया : तुम स्वतः ही उचित समझ सकते हो (कि उसे कहाँ ख़र्च करना चाहिए)।"[1] —अबू दाऊद, नसई

नातेदारों का हक़ प्रमुख है

व्यक्ति किसी समय अपने विशिष्ट स्वभाव अथवा निजी या पारिवारिक वैमनस्य के कारण नातेदारों का हक़ भुला देता है। वह अपनों के साथ तो सहानुभूति और अच्छे व्यवहार को पसन्द नहीं करता, परन्तु ग़ैरों के साथ पग-पग पर सहानुभूति, प्रेम और त्याग एवं दानशीलता का प्रदर्शन करता है। रक्त-सम्बन्धों तथा निकटतम सम्बन्धियों से अनदेखा करते और भुलाते हुए दुनियाभर के कल्याणकारी कार्यों से उसकी अभिरुचि जारी रहती है। यह उसका अस्वाभाविक कर्म है। इस्लाम ने इसे वर्जित ठहराया है। अल्लाह ने नेकी के बहुत-से कामों में इनफ़ाक़ (ख़र्च करने) का आदेश दिया है। इनमें सबसे अधिक सवाब परिवारजनों और सम्बन्धियों पर ख़र्च करने का है। इसकी श्रेष्ठता का उल्लेख हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) की एक रिवायत में इस प्रकार है :

- "अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया : जो दीनार (एक सिक्का) तुमने अल्लाह के रास्ते में ख़र्च किया, इसी प्रकार जो दीनार तुमने ग़ुलाम आज़ाद कराने में ख़र्च किया या जो दीनार तुमने किसी मुहताज पर ख़र्च किया और जो दीनार तुमने अपनी पत्नी व बच्चों पर ख़र्च किया, उनमें सबसे ज़्यादा अज्र और सवाब उस दीनार का है जो तुमने अपनी पत्नी और बच्चों पर ख़र्च किया।"

—मुसलिम

मुहताजों के अधिकारों की उपेक्षा न हो

इनसान को अपने आप और अपने निकट के सम्बन्धियों से प्रेम होता है। इसलिए

---

1. इससे स्पष्ट होता है कि माल आवश्यकता भर पहले अपने और परिवार के लिए ख़र्च किया जाना चाहिए। उसके बाद दूसरे लोगों पर व दूसरे जाइज़ कामों के लिए, और यह सब सदक़ा है। इस प्रकार, दान-पुण्य की ऐसी असन्तुलित भावना का इस्लाम खण्डन करता है जिसके तहत दूसरों के लिए और दूसरे परोपकारी कामों पर धन यूँ ख़र्च किया जाए कि स्वयं अपना और परिवार का जाइज़, आवश्यक व अनिवार्य हक़ मारा जाए। (प्रकाशक)

उनके अधिकारों का हनन कुछ कम ही होता है, परन्तु कभी-कभी यही प्रेम व्यापक क्षेत्र में जनसेवा के मार्ग में रुकावट बन जाता है। व्यक्ति इस बात को भूल जाता है कि उसके ऊपर जिस प्रकार उसके स्वयं के तथा उसके निकटतम सम्बन्धियों के अधिकार हैं उसी प्रकार समाज के मुहताजों तथा ज़रूरतमन्दों के भी अधिकार हैं। उसे उनकी आवश्यकताओं का अनुभव नहीं होता, उनकी कठिनाइयों से सहानुभूति नहीं होती, वह उनके अधिकारों की उपेक्षा करके केवल अपने आप तथा अपने परिवार को देखने लगता है और उनकी प्रसन्नता एवं आराम के लिए असंख्य लोगों के अधिकारों पर डाका डालता और उन्हें क्षति पहुँचाता है। यह अन्याय है और पूरे समाज के प्रति बुरी भावना भी। समाज की भलाई चाहने की माँग है कि व्यक्ति हर एक का हक़ अदा करे और किसी के हित को क्षति न पहुँचाए। इस्लाम ने जहाँ यह ताकीद की है कि व्यक्ति अपने और अपने सम्बन्धियों के अधिकारों को अदा करे, वहीं यह आदेश भी दिया है कि वह कोई ऐसा काम या प्रयास न करे जिससे समाज के किसी भी व्यक्ति को किसी प्रकार की हानि पहुँचे, बल्कि वह प्रत्येक इनसान की भलाई और उन्नति के लिए प्रयत्न करता रहे। जिस समाज में कमज़ोरों के अधिकार सुरक्षित न हों उसके विनाश एवं पतन में अधिक समय नहीं लगता। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया :

- "निस्संदेह अल्लाह उस समुदाय को पवित्र और (ज़िम्मेदारियों से) मुक्त नहीं ठहराएगा, जिसमें दुर्बल को उसका अधिकार न दिया जाए।" —मिशकात

इनसान अपने और परिवार के प्रेम में किसी भी सीमा पर नहीं रुकता। वह स्वयं भी भोग-विलास का जीवन व्यतीत करना चाहता है और अपने सम्बन्धियों के लिए भी भोग-विलास का जीवन उपलब्ध कराने की चेष्टा करता रहता है। इस प्रयत्न में अन्य हक़दारों के हक़ को क्षति पहुँचाए बिना सफल होना कठिन है। इस्लाम की दृष्टि में इनसान अपनी और अपने परिवारजनों की बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति का उत्तरदायी है। इसके बाद ही समाज के अन्य व्यक्तियों के अधिकार शुरू हो जाते हैं। यही वास्तविकता क़ुरआन की इस आयत में बताई गई है :

- "और वे तुमसे पूछते हैं कि नेकी की राह में कितना ख़र्च करें? कह दो : जो तुम्हारी आवश्यकता से अधिक हो ख़र्च करो।"[1] —क़ुरआन, 2 : 219

---

1. वर्तमान युग में भौतिकवादी व विलासपूर्ण जीवन एवं स्वार्थी मानसिकता ने 'आवश्यकता' को असीम बना दिया है। परिणामस्वरूप जो धन आवश्यकता से अधिक होता है वह भी आवश्यकता में शामिल कर लिया जाता है। क़ुरआन की इस आयत में अपव्यय, भोग-विलास और पूर्ण भौतिकवादी जीवन प्रणाली की 'आवश्यकताओं' को मान्यता नहीं दी गई है। (प्रकाशक)

भलाई के कामों में जो माल ख़र्च कर देना चाहिए उसके लिए आयत में 'अफ़्व' का शब्द प्रयोग हुआ है। इसका अर्थ है, 'वह माल जो अपनी और अपने सम्बन्धियों की आवश्यकताओं से अधिक हो।'[1] इससे आगे, आवश्यकताओं का निर्धारण नहीं किया गया है क्योंकि यह व्यक्तियों और परिस्थितियों के अनुसार भिन्न होती हैं। व्यक्ति स्वयं ही इस बात का निर्णय क़र सकता है कि कौन-सी वस्तु उसकी आवश्यकता में से है और कौन-सी नहीं है। इसी प्रकार यह भी ग़लत नहीं है कि व्यक्ति अपनी और अपने सम्बन्धियों की सुख-समृद्धि का ध्यान रखे और उनके भविष्य की चिन्ता करे, परन्तु इस्लाम इस बात को उचित नहीं ठहराता कि व्यक्ति अपनी सम्पन्नता की धुन में समाज के पीड़ित, विपत्तिग्रस्त तथा फ़ाक़े करनेवालों को भुला बैठे।

निस्संदेह इनसान के ऊपर सर्वप्रथम अपने निकटतम सम्बन्धियों के अधिकार लागू होते हैं। परन्तु उन अधिकारों का पालन करके वह उन दायित्वों से भारमुक्त नहीं हो सकता जो समाज का एक व्यक्ति होने के रूप में उसे पूरे करने होते हैं। किसी समाज का उत्तम नागरिक वही है जो इन दोनों प्रकार के दायित्वों को हर समय सामने रखे और उन्हें पूरा करने का प्रयत्न करे। इस्लाम इसी के लिए तैयार करता है।

धनी और निर्धन का स्थाई विभाजन नहीं है

इस्लाम दुर्बलों, निर्धनों और समाज के महरूम व्यक्तियों की सेवा और उनके साथ अच्छे व्यवहार की, बड़ी ताकीद के साथ आदेश देता है, परन्तु निवृतिमार्गी (संन्यास धारण करनेवाले) धर्मों अथवा कुछ असन्तुलित आर्थिक विचारधाराओं की भाँति वह समाज को दो स्थाई वर्गों में विभाजित नहीं करता कि एक वर्ग तो आर्थिक दृष्टि से सुदृढ़ हो और उसे हर प्रकार की सुविधाएँ प्राप्त हों तथा दूसरा वर्ग अपनी बुनियादी आवश्यकताओं के लिए भी उसका स्थाई मुहताज और उसके आगे हाथ फैलाए रहे। इस्लाम चाहता है कि समाज का हर व्यक्ति आर्थिक दृष्टिकोण से आत्मनिर्भर हो, उसे दूसरों के आगे हाथ न फैलाना पड़े, उसके लिए वह परिश्रम एवं प्रयत्न करे और अपनी तथा अपने सम्बन्धियों की आवश्यकता पूर्ति के लिए जाइज़ सीमाओं के भीतर ही प्रयास करे। ये समस्त चीज़ें उसके निकट अज्र और सवाब का कारण हैं। इसी के साथ समाज के जो लोग सम्पन्न हैं, जिनके पास आवश्यकता से अधिक माल है और

---

1. 'अफ़्व' की व्याख्या में अनेक कथन हैं। हज़रत अब्दुल्लाह बिन अब्बास (रज़ि०) ने इसकी व्याख्या इस प्रकार की है : "जो तुम्हारे परिवारजनों की आवश्यकताओं से बच जाए।" यही व्याख्या सहाबियों और उनके बाद के लोगों ने की है। इसका समर्थन हदीसों से भी होता है। देखें– तफ़सीर इब्न कसीर : 1/256

जो दूसरों की सहायता कर सकते हैं, इस्लाम उन्हें आदेश देता है कि कमज़ोरों की सहायता करें, उनके दुख-दर्द में काम आएँ और आर्थिक दृष्टि से स्थिरता प्राप्त करने में उनकी सहायता करें। इस विषय में वह राज्य को भी इस बात पर प्रतिबद्ध और मजबूर करता है कि जो लोग आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हुए हैं उन्हें सहयोग दे और जो लोग आर्थिक परिश्रम बिलकुल नहीं कर सकते उनका भरण-पोषण करे और उनकी आवश्यकताओं का भार उठाए। वास्तव में यह इस्लाम की दृष्टि में समाज को ऊपर उठाने और आत्मनिर्भर बनाने का उपाय है।

इस बात को आप इस तथ्य द्वारा भी समझ सकते हैं कि इस्लाम ने 'ज़कात' का वर्णन निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत किया है :

- "सदक़े तो वास्तव में ग़रीबों और मुहताजों के लिए हैं, और उन लोगों के लिए जो सदक़े (ज़कात) के काम पर नियुक्त हों और उनके लिए जिनके दिलों को परचाना अभीष्ट हो और यह गरदनों को छुड़ाने (ग़ुलामों को आज़ाद कराने) और क़र्ज़दारों की सहायता करने में, और अल्लाह के मार्ग में और मुसाफ़िरों पर दया दर्शाने में प्रयोग करने के लिए हैं। यह एक अनिवार्य पालनीय आदेश है अल्लाह की ओर से। और अल्लाह सब कुछ जाननेवाला और गहरी सूझ-बूझवाला है।" —क़ुरआन, 9 : 60

समाज में जो लोग मालदार और निश्चित निसाबवाले हैं, इस्लाम ने उन्हें ज़कात निकालने और निश्चित मदों में ख़र्च करने का आदेश दिया है, परन्तु उसने ऐसी कोई व्यवस्था क़ायम नहीं की कि ये सबकी सब मदें अनिवार्य रूप से बाक़ी रहें और हक़दारों का एक गिरोह दूसरों की सहायता पर पलता रहे, समाज में एक वर्ग ज़कात देनेवाला और एक ज़कात लेनेवाला बरक़रार रहे।

इस्लामी समाज में इस बात की संभावना है और व्यावहारिक रूप से ऐसा होता रहा है कि इनमें से कुछ मदें मौजूद न हों और केवल कुछ ही मदें रह जाएँ जिनमें ज़कात वितरित करनी पड़े।

यहाँ एक प्रश्न यह उठता है कि यदि ये समस्त मदें मौजूद हों तो क्या इन सबमें ज़कात वितरित करना अनिवार्य है? इमाम अबू हनीफ़ा (रह०), इमाम मालिक (रह०) और आम आलिमों के निकट इस्लामी राज्य को अधिकार है कि यदि वह आवश्यकता समझे तो उनमें से कुछ मदों पर ख़र्च करे और कुछ में न करे। परन्तु इमाम 'शाफ़ई' (रह०) ने इससे असहमति प्रकट की है। वे कहते हैं कि राज्य को समस्त मदों में ज़कात वितरित करनी चाहिए। अल्लामा इब्न रुश्द दोनों मतों का वर्णन करने के बाद लिखते हैं कि आयत में आए शब्द इस बात की अपेक्षा करते हैं कि ज़कात इन सब मदों में ख़र्च हो, परन्तु इनका आशय यह है कि ज़रूरतमन्दों को प्रमुखता दी जाए,

ताकि उनकी आवश्यकताएँ पूरी हों। आयत में जिन मदों का उल्लेख है उनका उद्देश्य केवल यह है कि इन मदों में ज़कात ख़र्च होनी चाहिए। ऐसा नहीं है कि अनिवार्य रूप से इन सबमें ख़र्च की जाए। —बिदायतुल मुजतहिद : 1/266, मुवत्ता

यह तो रहा राज्य का मामला, परन्तु व्यक्ति को भी अधिकार है कि वह अपनी पूरी ज़कात किसी एक मद में, जिसे वह महत्त्वपूर्ण समझता है, ख़र्च करे। उदाहरणस्वरूप एक व्यक्ति एक हज़ार रुपयों का क़र्ज़दार है जिसे वह अदा नहीं कर पा रहा है। यदि किसी की ज़कात की राशि एक हज़ार रुपये ही निकलती हो और वह समस्त राशि उसे दे दे ताकि वह क़र्ज़ चुका सके, तो यह जाइज़ है। इमाम इब्न तैमिया कहते हैं कि आम विचारकों का मत यही है। —फ़तावा इब्न तैमिया, नवीन मुद्रण 25/72

इसी प्रकार हर स्थान की ज़कात उसी स्थान पर ख़र्च होनी चाहिए, परन्तु 'फ़िक़्ह हनफ़ी' में कहा गया है कि यदि किसी के नातेदार दूसरे स्थान पर हों या वहाँ के लोग अधिक मुहताज हों तो ज़कात स्थानांतरित की जा सकती है ताकि वहाँ की आवश्यकता पूरी हो। —हिदाया : 1/188

इसके कुछ विस्तृत विवरणों में आलिमों के बीच मतभेद है, परन्तु इसपर सभी की सहमति है कि यदि किसी स्थान पर आवश्यकता न हो तो जहाँ आवश्यकता हो वहाँ ज़कात की रक़म ख़र्च की जा सकती है। —इब्न हुबैरा, अल-अफ़साह : 1/228

इससे यह तथ्य सामने आता है कि इस्लाम ने ज़कात की व्यवस्था के द्वारा सदक़ों और ख़ैरातों पर पलनेवाला कोई गिरोह तैयार नहीं किया है, बल्कि जो व्यक्ति आर्थिक दृष्टि से दुर्बल हैं और जिनकी आजीविका की कोई व्यवस्था नहीं है, इससे उनकी आजीविका का प्रबन्ध किया है।

निजी और सामाजिक आवश्यकताओं के लिए सहायता माँगी जा सकती है

इस्लाम ने अपनी आवश्यकताएँ दूसरों के आगे रखने और हाथ फैलाने से रोका है। परन्तु कुछ कठिन और चिन्ताजनक परिस्थितियों में अपनी आवश्यकताओं को बताने और सहायता माँगने की अनुमति दी है। हज़रत क़ुबैसा बिन मुख़ारिक़ (रज़ि०) कहते हैं कि मैंने अपने ऊपर एक आर्थिक दायित्व लिया था। मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से सहायता की अपील की। आप (सल्ल०) ने फ़रमाया : "यहीं मदीना में ठहरो, सदक़े का माल आएगा तो तुम्हारी ज़रूरत पूरी कर दी जाएगी।" उसके बाद आपने फ़रमाया :

- "ऐ क़ुबैसा ! माँगना जाइज़ नहीं सिवाय उस व्यक्ति के जो इन तीन में से एक हो, एक वह व्यक्ति जिसने दूसरों के लिए अपने ऊपर क़र्ज़ का भार

उठाया हो। क़र्ज़ की राशि उपलब्ध होने तक वह माँग सकता है, फिर उसे रुक जाना चाहिए। दूसरा वह व्यक्ति जिसका माल किसी दुर्घटना में बरबाद हो जाए उसके लिए भी माँगना जाइज़ है, यहाँ तक कि उसकी दशा सुधर जाए और वह खड़ा हो जाए अथवा आपने यह फ़रमाया कि यहाँ तक कि उसकी आवश्यकता पूरी हो जाए। तीसरा वह व्यक्ति जिसे उपवास (फ़ाक़ा) हो और उसकी क़ौम के तीन व्यक्ति विश्वास के साथ कहें (अर्थात गवाही दें) कि अमुक व्यक्ति फ़ाक़ा में ग्रस्त है, अतः उसके लिए भी माँगना जाइज़ है यहाँ तक कि उसकी दशा सुधर जाए या यह फ़रमाया कि उसकी आवश्यकता पूरी हो जाए। ऐ क़ुबैसा! इन तीन परिस्थितियों के अतिरिक्त माँगने के सभी तरीक़े हराम हैं। इनके द्वारा खानेवाला हराम खाता है।"

—मुसलिम

इसमें तीन प्रकार के व्यक्तियों को माँगने की अनुमति दी गई है। एक वह व्यक्ति जो लोगों के कलह और झगड़ों को समाप्त कराने तथा संघर्षरत गुटों के बीच सुलह-सफ़ाई कराने के लिए अपने ऊपर कोई आर्थिक ज़िम्मेदारी ले ले। यदि यह दायित्व वह स्वयं पूरा न कर सके तो दूसरों से सहायता ले सकता है। यह उसपर एक क़र्ज़ है जिसकी अदायगी में समाज को सहायता करनी चाहिए।[1]

व्यक्ति हों या संस्थाएँ और समितियाँ, उनके आपसी मतभेद उनका विनाश कर देते हैं। एक पक्ष अत्याचार करता है, दूसरा उसका बदला लेना चाहता है। एक अपने हक़ से बढ़कर माँग करता है तो दूसरा उसके हक़ ही को स्वीकार नहीं करता अथवा उसे उसके अधिकार से कम देना चाहता है। ये मतभेद जब सीमा को पार कर जाते हैं तो जान और माल की बड़ी हानि उठानी पड़ती है। इन संघर्षों और झगड़ों को कभी-कभी आर्थिक सहयोग द्वारा समाप्त किया जा सकता है और आपस में मेल-मिलाप हो सकता है। दो संघर्षरत व्यक्तियों अथवा गुटों के बीच सुलह समझौता कराने के लिए आर्थिक भार सहन करना जनसेवा का उत्कृष्ट रूप है। यह हदीस बताती है कि जो व्यक्ति इस सेवा के लिए उठे, वह इस सहयोग के लिए दूसरों से भी सहायतार्थ माँग सकता है। राज्य और समाज को इस विषय में उसका हाथ बटाना चाहिए।

दूसरा व्यक्ति जिसको इस हदीस में माँगने की इजाज़त दी गई है वह है जो किसी भौमिक और दैवी विपत्ति के कारण आर्थिक कठिनाइयों में घिर जाए। कभी-कभी आँधी-तूफ़ान, बाढ़, भूकम्प, अग्नि तथा लूट-पाट जैसी विपत्तियों में ग्रस्त होकर एक सम्पन्न व्यक्ति भी सहसा बुनियादी आवश्यकताएँ तक पूरा करने के योग्य नहीं रहता।

1. व्याख्या के लिए देखें 'मआलिमुस्सुनन' 2/67, 68

इन परिस्थितियों में उसे अनुमति दी गई है कि वह दूसरों से सहायता माँगे और अपनी आवश्यकताएँ पूरी करे।

इमाम 'खत्ताबी' कहते हैं कि यदि किसी का साज़ो सामान बाढ़ में डूब जाए अथवा आग से जल जाए या उसके ग़ल्ले और फलों को पाला मार जाए अथवा इस प्रकार की किसी अन्य विपत्ति में ग्रस्त हो जाए तो उसके लिए माँगना जाइज़ है और लोगों को सदक़ा एवं दान से उसकी सहायता करना अनिवार्य और वाजिब है। उस व्यक्ति से प्रमाण की माँग नहीं की जाएगी, उसका विनाश स्वतः ही उसकी आवश्यकता का प्रमाण है।

—मआलिमुस्सुनन : 2/67

हदीस के उल्लेखकर्ता कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया : "यहाँ तक कि उसकी दशा सुधर जाए" या फ़रमाया : "उसकी आवश्यकता पूरी हो जाए।" ये दोनों वाक्य समानार्थी हैं। इनका अर्थ यह है कि उसके पास इतनी सामग्री हो जाए कि व्यक्ति की मूल आवश्यकताएँ पूरी हो जाएँ और वह ज़रूरतमन्द न रह जाए। इनसान का जीवन जिन बातों पर निर्भर करता है उन्हें 'दशा सुधरना' कहा गया है। निर्धनता के कारण जीवन में जो बाधा और विघ्न उत्पन्न होती है उसे पाटने को "आवश्यकता पूरी हो जाना" से परिभाषित किया गया है। वास्तविकता यह है कि इस्लाम की दृष्टि में इनसान का नैसर्गिक अधिकार यह है कि उसकी मूल आवश्यकताएँ पूरी हों। इसके लिए वह उसे लाचारी की दशा में माँगने की अनुमति भी देता है।

हदीस में जिस आपात स्थिति का उल्लेख किया गया है उसका सामना किसी भी समय किसी भी व्यक्ति को हो सकता है। जो व्यक्ति इन परिस्थितियों में ग्रस्त हो कम से कम उसकी मूल आवश्यकताओं को अवश्य ही पूरा करने का प्रयत्न होना चाहिए। ये प्रयत्न व्यक्तियों की ओर से भी होने चाहिएँ और संस्थाओं की ओर से भी। यदि इनसान की अनिवार्य आवश्यकताएँ भी पूरी न हों तो उसके लिए अपनी हानि की क्षतिपूर्ति करने तथा अपनी पहली दशा को बहाल करने का उपाय करना सरल नहीं है और अधिक उन्नति करने और आगे बढ़ने के विषय में तो उसका मन शायद सोचने तक को तैयार न होगा।

तीसरा व्यक्ति जिसे माँगने की अनुमति दी गई है, फ़ाक़े करनेवाला व्यक्ति है जिसके फ़ाक़ों की गवाही उसके ख़ानदान, मुहल्ला और बस्ती के लोग दें। भुखमरी और फ़ाक़े के कारण बेरोज़गारी, कम आय, स्वास्थ्य का ख़राब होना आदि, अनेक हो सकते हैं। इनमें से किसी भी कारणवश व्यक्ति भुखमरी और फ़ाक़े की लपेट में आ गया हो तो उसे दूसरों से माँगने का अधिकार है और लोगों का नैतिक और कुछ परिस्थितियों में क़ानूनी कर्त्तव्य है कि उसकी सहायता करें और उसे मौत के मुँह में जाने से बचाएँ। परन्तु स्पष्ट है कि वह जिन कारणों से इस स्थिति में आया है उन

कारणों को दूर करना अधिक महत्त्वपूर्ण है, अन्यथा जब तक इन कारणों को दूर न किया जाए वह आश्रित बना रहेगा और सहायता के लिए हाथ फैलाता रहेगा और उसकी आवश्यकता समाप्त न होगी। इस्लाम किसी को भी इस स्थिति में देखना नहीं चाहता। इस विषय में उन हदीसों को सामने रखना चाहिए जिनमें माँगने की निन्दा की गई है।[1]

हदीस में उस व्यक्ति को भी माँगने की अनुमति दी गई है जो क़र्ज़ के कारण कठिन परेशानी में घिर गया हो। हज़रत अनस (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया :

- "माँगना तीन प्रकार के लोगों के लिए जाइज़ है—एक वह जिसको भुखमरी और फ़ाक़े ने बिलकुल लिटा दिया हो, दूसरा वह जिसपर क़र्ज़ का भारी बोझ हो, तीसरा वह जिसने किसी का ख़ून बहाया हो और उसकी 'दैत' (ख़ूनबहा) की समस्या उसे या उसके अभिभावकों को परेशान कर रही हो।"[2]

—अबू दाऊद

कभी-कभी व्यक्ति क़र्ज़ में इतनी बुरी तरह फँस जाता है कि उससे निकलने का कोई उपाय उसके पास नहीं होता। कभी-कभी तो इससे उसका सारा कारोबार ही समाप्त हो जाता है और उसके पास आजीविका का कोई साधन शेष नहीं रहता। क़र्ज़ के कारण चालू संस्थाएँ बन्द हो जाती हैं और बड़ी-बड़ी कम्पनियाँ विनष्ट हो जाती हैं। वर्तमान में इस प्रकार के लोगों और संस्थाओं के साथ दो प्रकार का व्यवहार अपनाया जाता है। एक यह कि उनके दिवालिया होने की घोषणा करके उनके कारोबार को समाप्त कर दिया जाता है। इस निर्दयता के परिणामस्वरूप समृद्धशाली जीवन व्यतीत

---

1. जो व्यक्ति किसी भौमिक और दैवी विपत्ति में ग्रस्त हो जाए उसके लिए हदीस में गवाही का उल्लेख नहीं किया गया है, क्योंकि उसकी हानि लोगों के सामने स्पष्ट है। यह स्वयं ही उसकी दरिद्रता और निर्धनता का प्रमाण है। परन्तु यदि एक सम्पन्न और खाता-पीता व्यक्ति अपनी भुखमरी और दरिद्रता को प्रकट करता है जैसे वह यह दावा करे कि उसकी समस्त सामग्री एवं माल चोरों ने लूट लिया है या किसी ने उसकी अमानत हड़प ली है या किसी आपात मुसीबत के कारण वह भुखमरी और फ़ाक़े का शिकार हो गया है तो आवश्यक होगा कि उसके निकट के तीन सूझ-बूझवाले व्यक्ति उसकी पुष्टि करें। इसकी हैसियत 'गवाही' की नहीं है, नहीं तो दो की गवाही पर्याप्त होती, बल्कि यह वास्तव में जाँच-पड़ताल और वस्तुस्थिति के विषय में जानकारी का एक तरीक़ा है। (देखें, मआलिमुस्सुनन : 2/67) शायद आप (सल्ल०) ने यह बात माँगने से रोकने के लिए भी फ़रमाई है, ताकि कोई भी व्यक्ति फ़ाक़े के नाम पर भिखमंगा न बन जाए। यह माँगने पर एक प्रकार का प्रतिबन्ध है।
2. इस आशय की अन्य हदीसें तिरमिज़ी, नसई और मुसनद अहमद में भी हैं।

करनेवाले, परिवार के परिवार, भुखमरी और दरिद्रता की लपेट में आ जाते हैं और उनकी आजीविका विनष्ट हो जाती है।

दूसरा व्यवहार जिसे सहानुभूति का व्यवहार समझा जाता है, यह है कि इस विपत्ति से निकलने और उनकी आजीविका को सुधारने के लिए फिर से क़र्ज़ दिया जाए। परन्तु आज के ज़माने में क़र्ज़ के साथ ब्याज भी अनिवार्य कर दिया गया है। यह तथाकथित सहानुभूति भी इनसान की लाचारी से लाभ उठाने का एक घिनौना रूप है। इससे व्यक्ति क़र्ज़ पर क़र्ज़ और ब्याज पर ब्याज के जाल में इस प्रकार फँसता चला जाता है कि फिर कभी उससे निकल नहीं पाता। इस स्थिति से छुटकारा पाने के लिए वह स्वयं ही इच्छा करने लगता है कि उसके दिवालिया होने का एलान करके उसके कारखानों और फ़ैक्ट्रियों पर ताले लगा दिए जाएँ।

इस्लाम का दृष्टिकोण यह है कि यदि किसी ने जाइज़ उद्देश्य और जाइज़ साधन से क़र्ज़ प्राप्त किया है और उस क़र्ज़ के डूबने में जान-बूझकर उसकी किसी ग़लती का दख़ल नहीं है तो समाज का कर्त्तव्य है कि इस विपत्ति से निकलने में उसकी सहायता करे। इसके लिए वह समाज और राज्य से अपील भी कर सकता है। ज़कात में भी उसके लिए एक मद रखी गई है। जो व्यक्ति भी इन दोनों व्यवहारों का तुलनात्मक अध्ययन करेगा, वह यह मानने पर बाध्य होगा कि इस्लाम का व्यवहार सहानुभूति और इनसानियत का है, जबकि वर्तमान युग ने क्रूरता और अत्याचार का व्यवहार अपनाया है।

जनसेवा पूरा दीन (धर्म) नहीं है

इस्लाम की बुनियाद अक़ीदों के बाद सुकर्मों पर है, परन्तु समस्त सुकर्म एक ही दर्जे और एक ही हैसियत के नहीं हैं। इनमें से कुछ अधिक महत्त्वपूर्ण हैं और कुछ का महत्त्व अपेक्षाकृत कम है। कुछ दीन के (धर्म) स्तंभ हैं, कुछ आवश्यक और कुछ पसंदीदा माने गए हैं, कुछ को केवल जाइज़ होने का दर्जा प्राप्त है। फ़िक़ह की भाषा में इस अन्तर को फ़र्ज़, वाजिब, मन्दूब, मुस्तहब और मबाह जैसे पारिभाषिक शब्दों द्वारा वर्णित किया जाता है। अपने महत्त्व के विचार से शरीअत ने कर्मों का जो क्रम क़ायम कर दिया है उसकी पाबन्दी बहुत आवश्यक है, वरना शरीअत की पूरी व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो जाएगी।

निस्संदेह शरीअत ने जनसेवा को बड़ा महत्त्व दिया है, परन्तु यही पूरा का पूरा दीन या उसका सार नहीं है। कुछ बुज़ुर्गों के विषय में कहा जाता है कि सेवा ही उनका दीन और धर्म था। हो सकता है कि इससे जनसेवा का महत्त्व बताना अभिप्रेत हो। परन्तु इसमें अतिरंजना अवश्य पाई जाती है। इससे दीन की अन्य महत्त्वपूर्ण माँगों का मूल्य घट जाता है या उनकी ओर उतना ध्यान नहीं दिया जाता जो देना चाहिए और ख़ुद उन बुज़ुर्गों के जीवन से सम्बन्धित कुछ और उत्कृष्ट पहलू दब जाते हैं। इस प्रकार का

असन्तुलित व्यवहार अन्य धर्मावलंबियों ने भी अपना लिया है। उनके निकट सेवा ही धर्म की रूह और उसका मूल और अभिप्राय है। मक्का के मुशरिकों में भी कुछ इसी प्रकार की भावना पाई जाती थी। वे अल्लाह के घर (काबा) की देखभाल करते थे, हाजियों के लिए पानी की व्यवस्था करने और उनकी सेवा को पुण्यकर्म मानते थे। वे इन सेवाओं पर बड़ा गर्व करते थे और इसी कारण वे स्वयं को 'काबा' के प्रबन्ध (तौलियत) का हक़दार समझते थे। इस्लाम किसी भी मामले में असंतुलन को नहीं आने देता और जीवन-क्षेत्र में जिस कर्म का जो स्थान है उसे ठीक उसी स्थान पर रखता है। अतः क़ुरआन ने मुशरिकों से कहा कि तुम्हारी ये सेवाएँ अल्लाह और आख़िरत पर ईमान, नमाज़ और ज़कात, दिल में अल्लाह से डर के अतिरिक्त और किसी का डर न होना, उसके दीन को क़ायम करने के प्रयास, इस मार्ग में जान और माल की क़ुरबानी, हिजरत और जिहाद जैसे उच्चकोटि के कर्मों का मुक़ाबला हरगिज़ नहीं कर सकतीं। जिनमें ये विशेषताएँ हैं वे ही 'काबा' का प्रबन्ध सँभालेंगे, तुम इसके हक़दार नहीं हो सकते।

- "अल्लाह की मसजिदों के आबाद करनेवाले (सेवक) तो वही लोग हो सकते हैं जो अल्लाह और अंतिम दिन को मानें, और नमाज़ का आयोजन करें, ज़कात दें, और अल्लाह के सिवा किसी से न डरें। उन ही से यह आशा है कि सीधी राह चलेंगे। क्या तुम लोगों ने हाजियों को पानी पिलाने और प्रतिष्ठित मसजिद (काबा) की आबादकारी को उस व्यक्ति के काम के बराबर ठहरा लिया है जो ईमान लाया अल्लाह और अंतिम दिन पर और जिसने संघर्ष किया अल्लाह के मार्ग में? अल्लाह की दृष्टि में तो ये दोनों बराबर नहीं हैं और अल्लाह अत्याचारियों को राह पर नहीं लगाया करता। अल्लाह के यहाँ तो उन ही लोगों का पद बड़ा है जो ईमान लाए और जिन्होंने उसके मार्ग में घर-बार छोड़े और अल्लाह के मार्ग में अपनी जानों और मालों से संघर्ष किया, यही लोग कामयाब होनेवाले हैं। उनका 'रब' उन्हें अपनी दयालुता और प्रसन्नता और ऐसे बाग़ों की शुभ-सूचना देता है जहाँ उनके लिए स्थायी आनन्द की सामग्री है। उनमें वे हमेशा रहेंगे। निस्संदेह अल्लाह के पास सेवाओं का बदला देने को बहुत कुछ है।" —क़ुरआन, 9 : 18-22

वास्तविकता यह है कि दीन (धर्म) की बहुत-सी अपेक्षाएँ हैं, उनमें से एक माँग यह भी है कि इनसानों की सेवा और उनकी भलाई का प्रयत्न किया जाए। परन्तु उसे पूरा करके कोई व्यक्ति दीन की अन्य माँगों से भारमुक्त नहीं हो जाता। दीन उससे जिस समय जिस माँग को पूरा करने का आह्वान करे उसे पूरा करना होगा।

निस्स्वार्थता (इख़लास) अनिवार्य है

किसी भी कर्म के लिए प्रेरक का प्रश्न बड़ा महत्त्वपूर्ण है। एक ही कर्म के पीछे अच्छे प्रेरक भी हो सकते हैं और बुरे भी। इस्लाम ने कर्म के प्रेरक को बुनियादी महत्त्व दिया है। उसकी दृष्टि में किसी कर्म का जाइज़ और उचित होना ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि उसके प्रेरक का ठीक होना भी आवश्यक है। वह सही प्रेरक को 'इख़लास' या 'निस्स्वार्थता' के नाम से पुकारता है और ग़लत प्रेरक को एक व्यापक शब्द 'रिया' या 'आडम्बर' के नाम से।

सेवा निस्स्वार्थ भाव से हो

जनसेवा अति उत्कृष्ट नेकी का काम और अल्लाह से निकट होने का साधन है। इसपर जिस अज्र और प्रतिदान का वचन दिया गया है, इनसान उसका हक़दार उसी समय होगा जब वह निस्स्वार्थ भाव से उसे पूरा करे और उसके सामने ख़ुदा की प्रसन्नता के अतिरिक्त कोई और उद्देश्य न हो। क़ुरआन ने इस वास्तविकता का 'इनफ़ाक़' (ख़र्च करना या दान देना) के तहत विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। रुपया-पैसा और माल का ख़र्च करना 'इनफ़ाक़' है। जनसेवा के कामों में क़दम-क़दम पर इसकी आवश्यकता पड़ती है। जनसेवा-कार्य के मार्ग में माल ख़र्च करना जितना कठिन है, उसमें निस्स्वार्थ भाव को अपनाए रखना उससे भी अधिक कठिन है। अल्लाह के जो बन्दे निस्स्वार्थ होकर अपनी दौलत ख़र्च करते हैं, क़ुरआन में उनकी प्रशंसा की गई है और उन्हें आख़िरत (परलोक) की सफलता की शुभ-सूचना दी गई है :

- "और जहन्नम से दूर रखा जाएगा उस व्यक्ति को जो अत्यन्त परहेज़गार और अल्लाह से डरनेवाला है, जो अपनी आत्मा की शुद्धता के लिए अपना धन देता है, उसपर किसी का कोई उपकार नहीं है कि वह उसका बदला दे। वह तो केवल अपने सर्वोच्च 'रब' की प्रसन्नता प्राप्ति के लिए यह कार्य करता है, और बहुत जल्द ही वह (उससे) प्रसन्न होगा।"

—क़ुरआन, 92 : 17-21

रिवायतों में कहा गया है कि ये आयतें हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) के बारे में उतरीं। मक्का के प्रारंभिक काल में इस्लाम क़बूल करनेवालों और विशेष रूप से ग़ुलामों पर असहनीय अत्याचार होते थे। हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) उन ग़ुलामों को ख़रीदकर आज़ाद कर देते थे। उन ग़ुलामों में हज़रत बिलाल (रज़ि०) भी थे। कुछ लोगों ने कहा कि संभव है हज़रत बिलाल (रज़ि०) ने हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) पर कोई एहसान किया हो और वे उनका बदला चुका रहे हों। (लोगों के इस संदेह को दूर करने और अबू

बक्र की इस पवित्र भावना को स्पष्ट करने के लिए) इन आयतों में इस संदेह का खण्डन और हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) की निस्स्वार्थता की प्रशंसा की गई है।

—तफ़सीर बग़वी और ख़ाज़िन : 7/213-214

हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) के इस इनफ़ाक़ (दान) को इस्लाम की सेवा भी कहा जा सकता है और इसे इनसानों की सेवा कहना भी अनुचित न होगा, परन्तु इस सेवा को अल्लाह तआला की प्रसन्नता का प्रमाण उस समय मिला जब इसके पीछे केवल उसी को प्रसन्न एवं राज़ी करने की भावना मौजूद और कार्यरत थी तथा वह अन्य प्रेरकों से पाक थी।

अल्लामा इब्न कसीर कहते हैं कि "इन आयतों में जिन विशेषताओं का वर्णन है वे हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) में पूरी तरह विद्यमान थीं और उन्हें इस मार्ग में प्राथमिकता का सम्मान भी प्राप्त है, परन्तु आयतों के शब्द आम हैं और पूरी उम्मत के लिए हैं।"

—तफ़सीर इब्न कसीर 4/521

अर्थात इससे अभिप्राय उम्मत का प्रत्येक वह व्यक्ति हो सकता है जिसमें ये विशेषताएँ पाई जाएँ।

निस्स्वार्थ ख़र्च करने का प्रतिदान

अल्लाह की ख़ुशी की चाहत के लिए ख़र्च करने के प्रतिदान और सवाब का वर्णन इन शब्दों में किया गया है :

- "जो लोग अपने धन केवल अल्लाह की ख़ुशी की चाहत में हृदय की पूरी स्थिरता के साथ ख़र्च करते हैं, उनके ख़र्च की उपमा ऐसी है जैसे कि उच्च धरातल पर एक बाग़ हो। यदि घोर वर्षा हो जाए तो दो गुना फल लाए, और यदि घोर वर्षा न भी हो तो एक हलकी फुहार ही उसके लिए पर्याप्त हो जाए। तुम जो कुछ भी करते हो, सब अल्लाह की दृष्टि में है।" —क़ुरआन, 2 : 265

यहाँ अल्लाह की ख़ुशी की चाहत के साथ 'हृदय की पूरी स्थिरता' की बात भी कही गई है। इसके कई अर्थ बयान किए गए हैं। एक यह कि वह ख़र्च करने पर अपने मन को जमाए रखते हैं यहाँ तक कि यह भावना उनके अन्दर स्थिर हो जाती है। दूसरा अर्थ यह है कि वह निस्स्वार्थता को पूर्णरूप से जीवित और हर खोट से पाक रखते हैं। उसमें कोई कमी नहीं आने देते। तीसरा अर्थ यह बताया गया है कि उन्हें परलोक और वहाँ की यातना व प्रतिदान का पूरा विश्वास होता है और वे यातना से बचने और प्रतिदान प्राप्ति के लिए अपना माल लुटाते रहते हैं।[1]

1. अधिक व्याख्या के लिए देखें—इमाम राज़ी की तफ़सीर कबीर 2/353

'इनफ़ाक़' को स्पष्ट और खुले रूप से सबके सामने करने की आवश्यकता भी पड़ सकती है, ताकि अन्य लोगों को नेकी और भलाई के कामों की प्रेरणा मिले और वे भी आगे बढ़ें। इसी प्रकार वह गुप्त रूप से और छिपाकर भी किया जा सकता है, ताकि लेनेवाले के स्वाभिमान को आघात न पहुँचे और वह अपनी तुच्छता का अनुभव न करे। समय एवं अवसर के अनुसार दोनों बातें उचित हैं। परन्तु दोनों में निस्स्वार्थता शर्त है।

अल्लाह का आदेश है :

- "अगर तुम अपने दान खुले रूप में दो तो यह भी अच्छा है, लेकिन यदि छिपाकर मुहताजों को दो तो यह तुम्हारे लिए अधिक अच्छा है। तुम्हारी बहुत-सी बुराइयाँ इस नीति से मिट जाती हैं। और जो कुछ तुम करते हो अल्लाह प्रत्येक दशा में उससे अवगत है।" —क़ुरआन, 2 : 271

गुप्त रूप से इनफ़ाक़ में दिखावे और पाखण्ड की संभावना कम होती है, अतः इसे अधिक अच्छा कहा गया है। जब तक किसी धार्मिक और मिल्ली (सामुदायिक) आवश्यकता की माँग न हो, 'इनफ़ाक़' गुप्त रूप ही से होना चाहिए। हदीसों में इसकी बड़ी श्रेष्ठता बताई गई है। हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया :

- "सात प्रकार के इनसानों को अल्लाह उस (क़ियामत) दिन अपनी छाया में स्थान देगा जबकि उसकी छाया के अतिरिक्त कोई छाया न होगी। (इनमें से) एक वह व्यक्ति भी है जिसने सदक़ा किया और उसे इस प्रकार गुप्त रखा कि बाएँ हाथ को इसका पता न चले कि दाहिने हाथ ने क्या ख़र्च किया है।" —बुख़ारी, मुसलिम

पाखण्ड से प्रतिदान (अज्र) और पुण्य (सवाब) नष्ट हो जाता है

पाखण्ड या आडम्बर निस्स्वार्थता के लिए बड़ा घातक विष है। जहाँ पाखण्ड हो वहाँ निस्स्वार्थता समाप्त हो जाती है। क़ियामत के दिन अच्छे कर्म निस्स्वार्थता के साथ फलदायक होंगे और पाखण्ड उन्हें निष्फल बना देगा। निस्स्वार्थता अल्लाह तआला की असीम कृपा का कारण होगी और पाखण्ड उसकी यातना और ग़ज़ब को आमंत्रित करेगा। इसी कारण क़ुरआन और हदीस में निस्स्वार्थता पर जितना बल दिया गया है उतना ही पाखण्ड से बचने की ताकीद की गई है। पाखण्ड से कर्म किस प्रकार निष्फल हो जाते हैं और अपना अज्र व सवाब खो बैठते हैं, इसे क़ुरआन में इस प्रकार समझाया गया है :

- "ऐ ईमान लानेवालो! अपने दान को एहसान जताकर और दुख देकर उस व्यक्ति की तरह मिट्टी में न मिला दो, जो अपना धन केवल लोगों को

दिखाने के लिए ख़र्च करता है और न अल्लाह को मानता है, न अंतिम दिन (परलोक) को। उसके ख़र्च की मिसाला ऐसी है जैसे एक चट्टान थी, जिसपर मिट्टी की तह जमी हुई थी। उसपर जब घोर वर्षा हुई, तो सारी मिट्टी बह गई और साफ़ चट्टान (पत्थर) ही रह गई। ऐसे लोग अपनी दृष्टि में दान करके जो पुण्य कमाते हैं उससे कुछ भी उनके हाथ नहीं आता, और विधर्मियों को सीधा मार्ग दिखाना अल्लाह का नियम नहीं है।" —क़ुरआन, 2 : 264

यहाँ पाखण्ड के साथ अल्लाह और परलोक पर ईमान न होने का उल्लेख है। वास्तविकता यह है कि निस्स्वार्थता उसी समय पैदा होती है जब ईमान भी हो। अल्लाह और आख़िरत (परलोक) पर ईमान के बिना किसी कर्म का पाखण्ड रहित होना कठिन, बल्कि असंभव है।

ख्याति के लिए सेवा

संसार से मोह रखनेवालों को ख्याति के द्वारा संसार मिलता है और व्यक्ति इससे सांसारिक हित को सम्मान के साथ प्राप्त करता है। जनसेवा कार्य-प्रसिद्धि और नाम कमाने का उत्तम साधन है। किसी के बारे में यह प्रसिद्धि प्राप्त करना कि वह इनसानों का शुभचिन्तक और उनका सेवक है, उसके विषय में अच्छी राय और विश्वास उत्पन्न करता है। एक दुनियादार आदमी उसे भुनाता और कैश (Cash) करता है। इसके द्वारा वह समाज में सम्मान, आदर और पद और सत्ता ख़रीदता है, माल-दौलत समेटता है और उसे हर प्रकार के भौतिक लाभ प्राप्त करने के लिए प्रयोग करता है। वह इनसानों की सेवा इसलिए नहीं करता कि वह उनसे सहानुभूति रखता है, बल्कि उन्हें अपने एहसान के नीचे दबाकर अपने भौतिक उद्देश्यों की पूर्ति करना चाहता है। जहाँ इसकी संभावना न हो वहाँ सेवा की यह भावना शिथिल हो जाती है।

ख्याति के लिए जनसेवा करने का परिणाम

ख्याति एवं प्रसिद्धि के लिए किसी नेक काम को करना अल्लाह के अज़ाब और यातना को आमंत्रित करना है। इससे अल्लाह का प्रकोप भड़कता है। इसकी जो निन्दा की गई और यातना की सूचना दी गई है उसे बयान करते हुए हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) पर बार-बार बेहोशी छा गई और हज़रत मुआविया (रज़ि०) सुनकर फूट-फूटकर रोने लगे।

● हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) रिवायत करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया कि क़ियामत में जब अल्लाह तआला बन्दों के कर्मों का निर्णय करने के लिए आएगा तो सर्वप्रथम तीन (प्रकार के) लोगों का निर्णय करेगा। उनमें से एक तो शहीद होगा। जब उसकी पेशी होगी तो अल्लाह तआला उसे दुनिया में दी गई शक्ति और योग्यता का स्मरण कराएगा, वह उसको स्वीकार करेगा। तब प्रश्न किया जाएगा कि

तूने इस उपकार का आभार किस प्रकार प्रकट किया और यह तेरी शक्ति एवं योग्यता कहाँ खर्च हुई? वह कहेगा : ऐ अल्लाह! तूने जिहाद का आदेश दिया था मैंने उसे पूरा किया और अपनी शक्तियों को तेरे मार्ग में लगा दिया और तेरे शत्रुओं से लड़ते हुए जान दे दी। अल्लाह कहेगा : तुम झूठे हो, तुमने जिहाद इसलिए किया था कि तुम्हें वीर और साहसी कहा जाए। दुनिया में तुम्हारी वीरता और साहस की ख़ूब चर्चा हुई और तुम्हारी अभिलाषा पूरी हो गई। इसके बाद आदेश होगा कि इसे मुँह के बल घसीटकर जहन्नम में फेंक दिया जाए, फिर वह जहन्नम में फेंक दिया जाएगा।

दूसरा व्यक्ति आलिम और क़ारी (क़ुरआन को अच्छे ढंग से पढ़नेवाला) होगा। अल्लाह उसे याद दिलाएगा कि क्या हमने तुम्हें अपनी किताब (क़ुरआन) का ज्ञान प्रदान नहीं किया था? वह इसे स्वीकार करेगा। प्रश्न होगा कि तुमने इसकी कृतज्ञता किस प्रकार प्रकट की? वह कहेगा कि तूने जो ज्ञान मुझे दिया था मैंने उसे फैलाया, क़ुरआन मजीद पढ़ा, याद किया और रात-दिन उसका पाठ करता रहा। अल्लाह फ़रमाएगा : तुम झूठ बोलते हो, तुमने यह सब इसलिए किया था कि तुम्हें आलिम और क़ारी कहा जाए। अतः तुम्हारी प्रसिद्धि ख़ूब हो चुकी। तुम्हारा बदला तुम्हें मिल गया। आदेश होगा कि मुँह के बल घसीटकर इसे भी जहन्नम में फेंक दिया जाए, और उसे फेंक दिया जाएगा।

तीसरा व्यक्ति धनवान और पूँजीपति होगा। उसकी पेशी होगी। अल्लाह तआला पूछेगा, क्या हमने तुम्हें हर प्रकार का माल व दौलत प्रदान नहीं की थी? वह अल्लाह के उपकारों को स्वीकार करेगा। प्रश्न होगा कि तुमने इन उपकारों का क्या किया? वह कहेगा : मैंने 'सिल-ए-रहमी' की (यानी निकटतम सम्बन्धियों पर ख़र्च किया), नेकी के कामों में ख़र्च किया, जिस-जिस मार्ग में पैसा लगाना तुझे पसन्द था मैंने उसमें ख़र्च किया। अल्लाह फ़रमाएगा : झूठ बोल रहे हो। तुमने ये सब कुछ इसलिए किया था कि तुम्हें दानशील और दाता कहा जाए और यह हो चुका। दुनिया में तुम्हारी दानशीलता के ख़ूब डंके बज चुके। फिर उसे भी मुँह के बल घसीटकर जहन्नम में फेंक दिया जाएगा।[1]

अल्लाह के इन पाखण्डी बंदों से जिन मामलों के बारे में सर्वप्रथम प्रश्न होगा, उनका सम्बन्ध कुछ महत्त्वपूर्ण दीनी (धार्मिक) सेवाओं से है। उन्हें जनसेवा के काम कहना भी उचित होगा। ज्ञान का फैलाना और नेकी के कामों में अपना धन ख़र्च करना स्पष्ट रूप से अल्लाह के बन्दों की सेवा है। जिहाद अल्लाह के दीन को क़ायम करने और प्रभावी बनाने तथा दुनिया से अत्याचार एवं अन्याय को समाप्त करने के लिए

---

1. इस हदीस का 'मुसलिम' में संक्षिप्त विवरण है। परन्तु 'तिरमिज़ी' में पूरा विवरण है। 'नसई' में भी यह हदीस है।

होता है। अपने विस्तृत भावार्थ में यह भी जनसेवा है। इन सेवाओं के पीछे ख्याति की चाह हो तो केवल यही नहीं कि इनका अज्र और सवाब अकारथ चला जाता है, बल्कि व्यक्ति अल्लाह के प्रकोप का निशाना भी बन जाता है।

निस्स्वार्थ जनसेवा का असीम प्रतिदान

जहाँ निस्स्वार्थता हो वहाँ इनसान अपने जैसे इनसानों से किसी पुरस्कार अथवा बदले की आकांक्षा से पाक होता है। वह केवल अल्लाह तआला को ख़ुश करना चाहता है। इसके अतिरिक्त उसके कर्मों का कोई अन्य प्रेरक नहीं होता। उसकी इनसानों से सहानुभूति और संवेदना प्रेरक यह नहीं होता कि उसकी प्रशंसा की जाएगी, चारों ओर उसके गीत गाए जाएँगे या वह इस सहानुभूति से दुनिया और दुनिया की पूँजी प्राप्त कर लेगा, बल्कि उसे वह अपना कर्त्तव्य समझता है, कृतज्ञता की भावना से उसका सिर झुक जाता है कि अल्लाह ने उसे अपने बन्दों की सेवा का अवसर और सामर्थ्य प्रदान किया। क़ुरआन में उनकी भावनाओं का चित्रण इस प्रकार किया गया है :

- "और अल्लाह के प्रेम में मुहताज और अनाथ और क़ैदी को खाना खिलाते हैं, (और उनसे कहते हैं कि) हम तुम्हें केवल अल्लाह के लिए खिला रहे हैं, हम तुमसे न कोई बदला चाहते हैं, न कृतज्ञतादर्शन। हमें तो अपने 'रब' से उस (क़ियामत के) दिन का डर लगा हुआ है जो सख़्त कठिन, अत्यन्त लम्बा दिन होगा।" —क़ुरआन, 76 : 8-10

इन आयतों के बाद उन पुरस्कारों का उल्लेख है जिनसे अल्लाह अपने उन निस्स्वार्थ बन्दों को सम्मानित करेगा और उनपर कृपा करेगा। चरित्र की यह श्रेष्ठता तथा सेवा के साथ यह विनम्रता केवल निस्स्वार्थ भावना से पैदा होती है। किसी अन्य प्रेरक में यह शक्ति नहीं है।

इन्हीं नेक और अल्लाह से डरनेवाले बन्दों के विषय में एक अन्य स्थान पर है :

- "जो प्रत्येक दशा में अपने माल ख़र्च करते हैं चाहे बुरे हाल में हो या अच्छे हाल में, जो ग़ुस्से को पी जाते हैं और दूसरों की ग़लतियों को क्षमा कर देते हैं, ऐसे नेक लोग अल्लाह को बहुत प्रिय हैं।" —क़ुरआन, 3 : 134

इस आयत में अल्लाह का डर रखनेवाले और संयमी लोगों की दो विशेषताएँ बताई गई हैं। एक यह कि वे निर्धनता और संपन्नता हर दशा में ख़र्च करते हैं। दूसरी यह कि क्षमा और दरगुज़र से काम लेते हैं। इन दोनों विशेषताओं में बड़ा गहरा सम्बन्ध दिखाई पड़ता है। व्यक्ति हाथ बढ़ाकर ख़र्च करता है तो उसके मन में अपनी बड़ाई के गर्व की भावना उठने लगती है। वह कम से कम उन लोगों को, जिनपर एहसान करता है, अपने से नीचा समझता है। उनकी कोई भी अशिष्ट बात तथा

गुस्ताख़ी उसके लिए असहनीय होती है। उनकी ग़लतियों को क्षमा करना और उनकी सेवा करते रहना बड़े साहस की बात है। क़ुरआन के ये शब्द संकेत देते हैं कि असीम ख़र्च करने के बावजूद अल्लाह के बन्दों में विनम्रता पाई जाती है। वे तो किसी को निन्दा का पात्र बनाने और उसे अपमानित करने के बहाने नहीं खोजते हैं, बल्कि दोषियों को भी क्षमा कर देते हैं। वे किसी की सेवा से इसलिए हाथ नहीं रोक लेते कि उसने उनके साथ अन्याय किया था। लोगों के अत्याचारों से उनकी सेवाओं का क्रम टूटता नहीं, बल्कि जारी रहता है। इनसानों के साथ इस प्रकार का व्यवहार करनेवालों को अल्लाह तआला का प्रेम और उसकी मुहब्बत हासिल होती है।

एहसान जताकर सवाब नष्ट न किया जाए

इसी का दूसरा पहलू क़ुरआन में इस प्रकार बताया गया है कि अल्लाह के नेक बन्दे इनफ़ाक़ (ख़र्च) करके एहसान नहीं जताते। एहसान जताना ओछेपन का प्रमाण है। अल्लाह तआला मोमिन को उच्च आचरण प्रदान करता है और उसे ओछेपन से सुरक्षित रखता है। क़ुरआन में है :

- "जो लोग अपने धन अल्लाह के मार्ग में ख़र्च करते हैं और ख़र्च करके फिर एहसान नहीं जताते, न दुख देते हैं, उनकी मज़दूरी (अज्र) उनके रब के पास है और उनके लिए किसी शोक और भय का अवसर नहीं।" —क़ुरआन, 2 : 262

अल्लाह को भूला हुआ इनसान किसी पर उपकार करता है तो चाहता है कि वह उसको स्वीकार करे और उसका कृतज्ञ और आभारी हो, उसकी प्रशंसा करता रहे, उसकी सेवा और आदर-सम्मान करे, उसकी दानशीलता और कृपाओं की चर्चा करे, उसकी माँगें पूरी करे, उसकी आँख के इशारों को समझे और उसके आदेशों का पालन करे। जब यह आशा पूरी नहीं होती तो उसे अपमानित करने पर उतारू हो जाता है, उसकी दरिद्रता और अपने एहसान की बार-बार चर्चा करके उसे कष्ट पहुँचाता है और कचोके लगाने का कोई भी अवसर हाथ से नहीं जाने देता। यह मानसिक और आत्मिक कष्ट किसी भी इनसान के लिए शारीरिक कष्ट से अधिक गहरा होता है।

क़ुरआन के निकट, एहसान जताकर किसी के स्वाभिमान को आघात पहुँचाने से अच्छा यह है कि व्यक्ति दो मीठे बोल बोलकर उसके काम आने में अपनी असमर्थता प्रकट कर दे। इससे उसके आत्मसम्मान को ठेस नहीं लगेगी और वह अनुभव करेगा कि एक शरीफ़ और शुभचिन्तक व्यक्ति से उसका मामला है।

- "एक मीठा बोल और किसी अप्रिय बात पर तनिक आँख बचा जाना उस दान से अच्छा है जिसके पीछे दुख हो। अल्लाह निस्पृह और सहनशील है।"

—क़ुरआन, 2 : 263

नेकी के अच्छे कामों के बाद एहसान जताना उन्हें सर्वनाश करना है। अतः क़ुरआन ने ताकीद की :

- "ऐ ईमानवालो! अपने दानों को—एहसान जताकर और दुख देकर उस व्यक्ति की तरह मिट्टी में न मिला दो, जो अपना धन केवल लोगों को दिखाने के लिए ख़र्च करता है।" —क़ुरआन, 2 : 264

हदीस में एहसान जताने पर बड़ी कड़ी यातना की धमकी दी गई है। हज़रत अबू ज़र (रज़ि०) की रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया :

- "तीन प्रकार के इनसानों से अल्लाह क़ियामत के दिन बात न करेगा और न उन्हें देखेगा और उनके लिए कठोर यातना होगी, (1) एहसान जतानेवाला, (2) झूठी क़सम खाकर अपना माल बेचनेवाला और (3) अपना (अभिमान से) तहबन्द[1] ज़मीन पर लटकानेवाला।" —मुसलिम

ओछा इनसान, एहसान जताकर और कष्ट पहुँचाकर अपनी श्रेष्ठता मनवाना चाहता है। यह उसकी मूर्खता है। श्रेष्ठता उन्हें मिलती है जो इनसानों से किसी बदले की भावना एवं कामना से निस्पृह होकर उनकी सेवा करते हैं। यही इनसानों के निकट प्रिय हैं और यही अल्लाह को भी प्रिय हैं।

---

1. तहबन्द अर्थात लुंगी। आजकल... पाजामा व पैन्ट आदि भी।